VEC, Library
011882

कथा प्रतिपिका

कौसल्या. एस. गाब्रानी

VEC, Library
011882

11882

कथा प्रदीपिका

(श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों का संकलन)

सम्पादिका
कौसल्या. एस. गाबानी

VIJAYA EVENING COLLEGE
LIBRARY
BANGALORE-4
ACCN NO. 011882
SECTION Hindi
COST Rs. 20/=
Date 13-08-99 Librarian

विक्रेता
अनिल पुस्तक केन्द्र
61/F4, अवेन्यू रोड़, बेंगलोर - 2

प्रकाशक नन्दिनी प्रकाशन
२८, चटरासलैनस
इलाहाबाद - 1

संस्करण 1999

© प्रकाशक

मुद्रक कैलास प्रेस
इलाहाबाद - ३

मूल्य Rs. 20/-

KATHA PRADEEPIKA

EDITED BY: KOWSALYA. S. GABRANI

विषय सूची

प्रेमचंद

प्रेरणा - 2

जयशंकर प्रसाद

अशोक - 17

यशपाल

चार आने - 31

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

राजा साहब की कुतिया - 44

विष्णु प्रभाकर

मेरा वतन - 53

रांगेय राघव

नया समाज - 66

शेलेष मटियानी

तथ्य और सत्य - 81

ऊषा प्रियंवदा

जिन्दगी और गुलाब के फूल - 89

नलिन विमोचन शर्मा

विष के दाँत - 103

भूमिका

हिन्दी गद्य साहित्य में कहानी एक ऐसी विधा है, जिसका जन्म हर युग के साथ हुआ। आदि युग में भी कहानी थी, मध्ययुग में भी कहानी ने मानव मन की भावना को उपदेशात्मक रूप में समझा, आधुनिक युग में कहानी ने व्यक्ति और समाज के विभिन्न रूपों को प्रकट करना अपना कर्तव्य समझा। यही कारण था कि लघुकथा अपने तात्विक रूप के साथ उभर कर सामने आई। उसने व्यक्ति और समाज के हर भावों को कथा के विविध आयाम में व्यक्त करना चाहा। ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और व्यक्ति परक कथा को चुना। स्वतंत्रता के पश्चात् कहानीकार ने नारी को भी अपनी लेखनी का आधार बनाया। क्योंकि बदलते युग ने पुरुष और नारी को बराबर की मान्यता प्रदान की। परिणाम स्वरूप नारी की दशा, चरित्र और उसकी मान्यताओं को भी कहानी का मुद्दा बनाया गया। इस भांति समाज और व्यक्ति के हर वर्ग को कहानीकार ने व्यक्त कर उसके उद्देश्य को साधारण-से साधारण पाठकों तक पहुँचाना अपना कर्तव्य समझा।

प्रस्तुत कहानी संकलन 'कथा प्रदीपिका' में समाज और व्यक्ति से सम्बन्धित कहानियों को संकलित किया है। उपदेश, इतिहास, परिवार, समाज और व्यक्ति विशेष को कहानियों से जोड़ा गया है। छात्रों के अध्ययन की दृष्टि को मुख्यरूप से ध्यान में रखते हुए, उस संकलन की सृष्टि की गई है। इस संकलन को तैयार करते हुए एक और विशेष बात ध्यान में रखी गई है कि जिन कहानियों को पहले अन्य संकलनों में रखा गया है, उनकी पुनवृत्ति न हो। जिन-जिन लेखकों की कहानियों को संकलन में संग्रहित किया गया है, उनके प्रति आभार करना भी हमारा कर्तव्य बन जाता है। यदि यह संकलन विद्यार्थियों के ज्ञान को बढ़ाने में सहयोगी होगा तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे। पुनश्च

– सम्पादिका

प्रेमचंद

कहानी और उपन्यास को नई दिशा देनेवाले कथाकारों में मुंशी प्रेमचंद का अपना विशिष्ट स्थान रहा है । उन्होंने निम्न और मध्यवर्ग को अपने उपन्यासों और कहानियों में उतारा है । उनकी समस्याओं का जीता-जागता वर्णन व्यक्त हुआ है । *'प्रेरणा'* कहानी में लेखक और सूर्यप्रकाश दो ही पात्र है । एक अध्यापक और दूसरा ऊधमी लड़का । जिस की शरारतों ने लेखक की नाक में दम कर दिया था । जिस की शैतानियाँ देखकर लेखक ने उसके भविष्य को अन्धकारमय समझा था । समय के परिवर्तन ने लेखक नौकरी से त्यागपत्र देकर गांव की पाठशाला में पढ़ाता है । उधर मामा के बेटे के कारण सूर्यप्रकाश की जिन्दगी बदल जाती है और वह डिप्टी कमिश्नर बन कर लेखक से मिलता है । मामा के बेटे ने प्रेरक बन कर कैसे सूर्यप्रकाश की जिन्दगी को बदला ? इसी प्रेरणा के महत्व और अन्तःभावना को व्यक्त किया गया है, इस कहानी में ।

प्रेरणा

प्रेमचन्द

मेरी कक्षा में सूर्यप्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था, बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। अध्यापकों को बनाने और चिढ़ाने, उद्योगी बालकों को छेड़ने और रुलाने में ही उसे आनन्द आता था। ऐसे-ऐसे षड्यन्त्र रचता, ऐसे-ऐसे फंदे डालता, ऐसे-ऐसे बंधन बांधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गिरोहबंदी में अभ्यस्त था।

खुदाई फौजदारों की एक फैज बना ली थी और उसके आतंक से शाला पर शासन करता था। मुख्य अधिष्ठाता की आज्ञा टल जाय, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्म की अवज्ञा कर सके। स्कूल के चपरासी और अर्दली उससे घर-घर काँपते थे। इन्स्पेक्टर का मुआइना होने वाला था, मुख्य अधिष्ठाता ने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समय से आध घन्टा पहले आ जाएँ। मतलब था कि लड़कों को मुआइने के बारे में कुछ जरूरी बातें बता दी जाएँ, मगर दस बज गये, इन्स्पेक्टर साहब आकर बैठ गये, और मदरसे में एक लड़का भी नहीं। ग्यारह बजे सब छात्र इस तरह निकल पड़े जैसे कोई पिंजरा खोल दिया गया हो। इन्स्पेक्टर साहब ने कैफियत में लिखा-डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाश की थी, मगर बहुत पूछताछ करने पर भी किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक न लिया। मुझे अपनी संचालन-विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कालेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी, मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल जैसे मोर्चा खा

गया था। कुछ अवल ही काम न करती कि शैतान को कैसे सन्मार्ग पर लायें। कई बार अध्यापकों की बैठक हुई ; पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षा-विधि के अनुसार मैं दंडनीति का पक्षपाती न था, मगर यहाँ हम इस नीति से केवल इसलिए विरक्त थे कि कहीं उपचार से भी रोग असाध्य न हो जाय। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर इस नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षा-शास्त्र के आचार्य एक बारह-तेरह साल के उद्दंड बालक का सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था, क्योंकि वह मेरी कक्षा का छात्र था और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता, तो हरदम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपति आती है। एक दिन मैने अपनी मेज की दराज खोली, तो उसमें से एक बड़ा-सा मेंढक निकल पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा तो क्लास में एक शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रों से देखकर रह गया। सारा घंटा उपदेश में बीत गया और वह पट्ठा सिर झुकाये नीचे मुस्कुरा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे की कक्षाओं में कैसे पास हुआ था। एक दिन मैने गुस्से से कहा-तुम इस कक्षा से उम्र भर नहीं पास हो सकते। सूर्यप्रकाश ने अविचलित भाव से कहा-आप मेरे पास होने की चिन्ता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूँ और अबकी भी हूँगा।'

'असम्भव'!'

'असम्भव सम्भव हो जायेगा !'

मैं आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगा। जहीन से जहीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैने सोचा, वह प्रश्न-पत्र उड़ा लेता होगा। मैने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक

चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबड़ाकर निकल जायेगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देखभाल से काम किया ; मगर जब सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा, तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों ही में उसके नम्बर कक्षा में सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई प्रश्न भी हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था ; मगर उसके उत्तर-पत्रों को क्या करता ! लिपि में इतना भेद न था जो कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गये ; मगर उन्हें भी जान-बूझकर मक्खी निगलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव ही से निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकों को मैं सूर्यप्रकाश के विषय में जारा भी चिंतित न पाता था। मानो ऐसे लड़कों का स्कूल में आना कोई नई बात नहीं, मगर मेरे लिए वह एक विकट रहस्य था। अगर यही ढंग रहे, तो एक दिन या तो जेल में होगा, या पागलखाने में।

२

उसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल था, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकों से मैत्री हो गई थी, मगर मैं अपने तबादले से खुश हुआ ; क्योंकि सूर्यप्रकाश मेरे मार्ग का काँटा न रहेगा। लड़कों ने मुझे विदाई की दावत दी और सब के सब स्टेशन तक पहुँचाने आये। उस वक्त सभी लड़के आँखों में आँसू भरे हुए थे। मैं भी अपने अपने आँसुओं को न रोक सका। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगी थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलते उससे दो-चार बातें कर लूँ। शायद वह भी मुझसे कुछ कहना चाहता था, मगर न मैंने पहले बातें कीं, न उसने हालाँकि मुझे बहुत दिनों तक इसका खेद

रहा। उसकी झिझक तो क्षमा के योग्य थी ; पर मेरा अवरोध अक्षाम्य था, संभव था, उस करुणा और ग्लानि की दशा में मेरी दो-चार निष्कपट बातें उसके दिल पर असर कर जाती; मगर इन्हीं खोये हुए अवसरों का नाम तो जीवन है। गाड़ी मंदगति से चली। लड़के कई कदम तक उसके साथ दोड़े। मैं खिड़की के बाहर सिर निकाले खड़ा था। कुछ देर मुझे उनके हिलते हुए रूमाल नजर आये। फिर वे रेखाएँ आकाश में विलीन हो गई : मगर एक अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैने अनुमान किया, वह सूर्यप्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल कैदी की भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनता के बंधनों को तोड़-तोड़कर उसके गले मिलने के लिए तड़प उठा।

नये स्थान की नई चिंताओं ने बहुत जल्द मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पिछले दिनों की याद एक हसरत बनकर रह गई। न किसी का कोई खत आया, न मैने कोई खत लिखा। शायद दुनिया का यही दस्तूर है। वर्षा के बाद वर्षा की हरियाली कितने दिनों रहती है। संयोग से मुझे इंग्लैण्ड में विद्याभ्यास करने का अवसर मिल गया। वहाँ तीन साल लग गये। वहाँ से लौटा तो एक कालेज का प्रिसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लिए बिलकुल आशातीत थी। मेरी भावना स्वप्न में भी इतनी दूर न उड़ी थी ; किन्तु पदलिप्सा अब किसी और भी ऊँची डाली पर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षामंत्री से रब्त-जब्त पैदा किया। मंत्री महोदय मुझ पर कृपा रखते थे ; मगर वास्तव में शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तों का उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर वह सवार थे, लगाम मेरे हाथ में थी। फल यह हुआ कि उनके राजनैतिक विपक्षियों से मेरा विरोध हो गया। मुझ पर जा-बेडा आक्रमण होने लगे। मैं सिद्धान्त रूप से अनिवार्य शिक्षा की जरूरत है, भारत में नहीं। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता का मूल तत्व है। वहाँ किसी काम की

प्रेरणा, आर्थिक लाभ के आधार पर होती है। जिन्दगी की जरूरत ज्यादा है ; इसलिए जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण है। माता-पिता भोग के दास होकर बच्चों को जल्द-से-जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते है। इसकी जगह कि वह मद का त्याग करके एक शिलिंग रोज की बचत कर लें, वे अपने कमसिन बच्चे को एक शिलिंग की मजदूरी करने के लिए दवायेंगे। भारतीय जीवन में सात्विक सरलता है। हम उस वक्त तक अपने बच्चों से मजदूरी नहीं कराते, जब तक कि परिस्थिति हमें विवश न कर दे। दरिद्र से दरिद्र हिन्दुस्तानी मजदूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन में यह अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ़ जाय। इसलिए नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा ; बल्कि केवल इसलिए कि विद्या मानवी शील का एक शृङ्गार है। अगर यह जानकर भी वह अपने बच्चे को मदरसे नहीं भेजता, तो समझ लेना चाहिये कि वह मज़बूर है। ऐसी दशा में उस पर कानून का प्रहार करना मेरी दृष्टि में न्याय-संगत नहीं है। इसके सिवाय मेरे विचार में अभी हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है। उर्द्ध शिक्षित और अल्पवेतन पाने वाले अध्यापकों से आप यह आशा नहीं रख सकते कि वह कोई ऊँचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि चार-पाँच वर्ष में बालक को अक्षर ज्ञान हो जायगा। मैं इसे पर्वत खोदकर चुहिया निकालने के तुल्य समझता हूँ। वयस प्राप्त हो जाने पर यह मसला एक महीने में आसानी से तय किया जा सकता है। मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि युवावस्था में हम जितना ज्ञान एक महीने में प्राप्त कर सकते, उतना बाल्यावस्था में तीन साल में भी नहीं कर सकते, फिर ख़ामख्वाह बच्चों को मदरसे में कैद करने से क्या लाभ ? मदरसे के बाहर रखकर उसे स्वच्छ वायु तो मिलती, प्राकृतिक अनुभव तो होते। पाठशाला में बन्द करके तो आप उसके मानासिक और शारीरिक दोनों विधानों की जड़ काट देते हैं। इसीलिए जब प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणा से मिनिस्टर

साहब ने उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था। मिनिस्टर साहब की और मेरी वह ले.दे हुई कि कुछ न पूछिए। व्यक्तिगत आक्षेप किए जाने लगे। मैं गरीब की बीवी था, मुझे ही सबकी भाभी बनना पड़ा। मुझे देशद्रोही, उन्नति का शत्रु और नौकरशाही का गुलाम कहा गया। मेरे कालेज में जरा सी भी कोई बात होती तो कौंसिल में मुझ पर वर्षा होने लगती। मैंने एक चपरासी को पृथक् किया। सारी कौंसिल पंजे झाड़कर मेरे पीछे पड़ गई। आखिर मिनिस्टर साहब को मजबूर होकर उस चपरासी को बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लिए असह्य था। शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहब से मुझे शिकायत नहीं। वह मजबूर थे। हाँ, इस वातावरण में काम करना मेरे लिए दुस्साध्य हो गया। मुझे अपने कालेज के आन्तरिक संगठन का भी अधिकार नहीं। अमुक क्यों नहीं परीक्षा में भेजा गया, अमुक के बदले अमुक को क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई, अमुक अध्यापक को अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती, इस तरह के सारहीन आक्षेपों ने मेरी नाक में दम कर दिया था। इस नई चोट ने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया।

मुझे मिनिस्टर साहब से इतनी आशा अवश्य थी कि वह कम-से-कम इस विषय में न्याय-परायणता से काम लेंगे ; मगर उन्होंने न्याय की जगह नीति को मान्य समझा और मुझे कई साल की भक्ति का यह फल मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसार का ऐसा कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गये थे, उन्हीं दिनों पत्नी का देहान्त हो गया। अन्तिम दर्शन भी न कर सका। सन्ध्या-समय नदी-तट पर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं। लौटा, तो उनकी लाश मिली। कदाचित् हृदय की गति बन्द हो गई थी। इस आघात ने कमर तोड़ दी। माता के प्रसाद और आशीर्वाद से हुआ ; वह मेरे भाग्य की विधात्री थीं। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य। उनके माधुर्य में

तीक्ष्णता का नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उनकी भृकुटी संकुचित देखी हो, वह निराश होना तो जानती ही न थीं। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य निराश हो गये हैं, पर अपने पति के जीवन-काल में मरूँगी और वही हुआ भी। मैं जीवन में अब तक उन्हीं के सहारे खड़ा था। जब वह अवलम्ब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है, सदैव आगे बढ़ते रहने की लगन का। यह लगन गायब हो गई। मैं संसार से विरक्त हो गया। और एकान्तवास में जीवन के दिन व्यतीत करने का निश्चय करके एक छोटे से गाँव में आ बसा। चारों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, एक ओर गंगा बहती थी। मैंने नदी के किनारे एक छोटा-सा घर बना लिया और उसी में रहने लगा।

३

मगर काम करना तो मानवी स्वभाव है। बेकारी में जीवन कैसे कटता। मैंने एक छोटी-सी पाठशाला खोल ली ; एक वृक्ष की छाँह में गाँव के लड़कों को जमाकर कुछ पढ़ाया करता था। उसकी यहाँ इतनी ख्याति हुई कि आस-पास के गाँव के छात्र भी आने लगे।

एक दिन मैं अपनी कक्षा को पढ़ा रहा था कि पाठशाला के पास एक मोटर आकर रूकी और उसमें से उस जिले के डिप्टी कमिश्नर उतर पड़े। मैं उस समय केवल एक कुर्ता और धोती पहने हुए था। इस वेश में एक हाकिम से मिलते हुए शर्म आ रही थी। डिप्टी कमिश्नर मेरे समीप आये तो मैंने झेंपते हुए हाथ बढ़ाया, मगर वह मुझसे हाथ मिलाने के बदले मेरे पैरों की ओर झुके और उन पर सिर रख दिया। मैं कुछ ऐसा सिटपिटा गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। मैं अँगरेजी अच्छी लिखता हूँ दर्शनशास्त्र का भी आचार्य हूं, व्याख्यान भी अच्छे दे लेता हूँ। मगर इन गुणों में एक भी श्रद्धा के योग्य नहीं। श्रद्धा तो ज्ञानियों और साधुओं ही के अधिकार की वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता, तो एक बात थी।

हालाँकि एक सिविलियन का किसी ब्राह्मण के पैरों पर सिर रखना अचिंतनीय है।

मैं अभी इसी विस्मय में पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर उठाया और मेरी तरफ देखकर कहा - आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल गये, बोला - आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है ?

'जी हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ।'

'बारह-तेरह बर्ष हो गये।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कराकर कहा - अध्यापक लड़कों को भूल जाते हैं, पर लड़के उन्हें हमेशा याद रखते हैं।

मैने उसी विनोद के भाव से कहा - तुम जैसे लड़कों को भूलना असंभव है।

सूर्यप्रकाश ने विनीत स्वर में कहा - उन्हीं अपराधों को क्षमा कराने के लिए सेवा में आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप प्रिसिपल हुए, मैं इग्लैण्ड जाने को तैयार था। वहाँ मैं पत्रिकाओं में आपके लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा, तो मालूम हुआ मुझे एक वर्ष से अधिक हुआ ; पर इसका जरा भी अनुमान न या कि आप यहाँ एकांत-सेवन कर रहे हैं। इस उजाड़ गाँव में आपका जी कैसे लगता है ? इतनी ही अवस्था में आपने वानप्रस्थ ले लिया ?

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाश की उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यमय आनंद हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता तो भी इससे अधिक आनंद न होता। मैं उसे अपने झोंपड़े में लाया और अपनी रामकहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाश ने कहा-तो यह कहिए कि आप अपने ही एक भाई के विश्वासघात के शिकार हुए। मेरा अनुभव तो अभी बहुत कम है ; मगर

इतने ही दीनों में मुझे मालूम हो गया है, कि हम लोग अभी अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्टर साहब से भेंट हुई ; तो पूछूँगा, कि यही आपका धर्म था।

मैंने जवाब दिया-भाई, उनका दोष नहीं। संभव है, इस दशा में मैं भी वही करता, जो उन्होंने किया। मुझे अपनी स्वार्थलिप्सा की सजा मिल गई। और उसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ। बनावट नहीं, सत्य कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शांति है, वह और कहीं न थी। इस एकान्त-जीवन में मुझे जीवन के तत्वों का वह ज्ञान हुआ, जो संपत्ति और अधिकार की दौड़ में किसी तरह संभव न था। इतिहास और भूगोल के पोथे चाटकर और यूरोप के विद्यालयों की शरण जाकर भी मैं अपनी ममता को न मिटा सका ; बल्कि यह रोग दिन-दिन और भी असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियों पर पाँव रखे बगैर छत की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। सम्पत्ति की अट्टालिका तक पहुँचने में दूसरों की जिंदगी ही जीनों का काम देती है। आप कुचलकर ही लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। वहाँ सौजन्य और सहानुभूति का स्थान ही नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंस जंतुओं से घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्मरक्षा में ही लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर संतोष और सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओं में प्रशंसा या गौरव की लालसा है।

यह कहकर मैंने सूर्यप्रकाश के चेहरे की ओर गौर से देखा। कपट मुसकान की जगह ग्लानि का रंग था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ से इतने निराश हो गये थे, वह अब इस पद को सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योग का बखान कराना चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई। एक सम्पन्न आदमी के सामने समृद्धि की निंदा उचित नहीं। मैंने तुरन्त बात पलट कर कहा - मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह काया-पलट कैसे हुई ? तुम्हारी शरारतों को याद करता

हूँ तो अब भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। किसी देवता के वरदान के सिवा और तो कहीं यह विभूति न प्राप्त हो सकती थी।

सूर्यप्रकाश ने मुसकराकर कहा - आपका आशीर्वाद था।

मेरे बहुत आग्रह करने पर सूर्यप्रकाश ने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया- 'आपके चले जाने के कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूल में दाखिल हुआ। उसकी उम्र आठ-नौ साल से ज्यादा न थी। प्रिसिंपल साहब उसे होस्टल में न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरने का प्रबन्ध कर सकते थे। उन्हें इस संकट में देखकर मैने प्रिसिपल साहब से कहा-उसे मेरे कमरे में ठहरा दीजिये प्रिसिपल साहब ने इसे नियम-विरूद्ध बतलाया। इस पर मैने बिगड़कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया और एक किराये का मकान लेकर मोहन के साथ रहने लगा। उसकी माँ कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमजोर और गरीब लड़का था कि पहले ही दिन से मुझे उस पर दया आने लगी। कभी उसके सिर में दर्द होता, कभी ज्वर हो आता। आये दिन कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर साँझ हुई और झपकियाँ आने लगीं। बड़ी मुश्किल से भोजन करने उठता। दिन चढ़े तक सोया करता और जब तक मैं गोद में उठाकर बिठा न देता, उठने का नाम न लेता। रात को बहुधा चौंक कर मेरी चारपाई पर आ जाता। मेरे गले से लिपटकर सोता। मुझे उस पर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहाँ पहले नौ बजे सोकर उठता था, अब तड़के उठ बैठता और उसके लिए दूध गरम करता। फिर उसे उठाकर हाथ-मुँह धुलाता और नाश्ता कराता। उसके स्वास्थ्य के विचार से नित्य वायु सेवन को ले जाता। मैं जो कभी किताब लेकर न बैठता था, उसे धंटों पढ़ाया करता। मुझे अपने दयित्व का इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती तो मेरे प्राण नखों में समा जाते। डाक्टर के पास दौड़ता, दवाएँ लाता और मोहन की खुशामद करके दवा पिलाता। सदैव यह चिंता लगी रहती थी, कि कोई बात उसकी

इच्छा के विरुद्ध न हो जाय। इस बेचारे का यहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन है। मेरे चंचल मित्रों में से कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता तो मेरी त्योरियाँ बदल जाती थीं। कई लड़के तो मुझे बूढ़ी दांई कहकर चिढ़ाते थे ; पर मैं हँसकर टाल देता था। मैं उसके सामने एक अनुचित शब्द भी मुँह से न निकालता। यह शंका होती थी, कि कहीं मेरी देखा-देखी यह भी खराब न हो जाय। मैं उसके सामने इस तरह रहना चाहता था, कि वह मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लिए यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ वह मेरा नौ बजे सोकर उठना, बारह बजे तक मटरगदती करना, नई-नई शरारतों के मंसूबे बाँधना और अध्यापकों की आँख बचाकर स्कूल से उड़ जाना, सब आप-ही-आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र पालन के सिद्धान्तों का मैं शत्रु था ; पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमों का रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वर का उपहास किया करता ; मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था। वह बड़े सरल भाव से पूछता, परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे पास भी रहते होंगे। इस प्रश्न का मजाक उड़ाना मेरे खिए असंभव था। में कहता-हाँ परमात्मा तुम्हारे, हमारे सबके पास रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा आनन्द से खिल उठता था, कदाचित् वह परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने लगता था। साल ही भर में मोहन कुछ से कुछ हो गया। मामा साहब दोबारा आये, तो उसे देखकर चकित हो गये। आँखों में आँसू भरकर बोले- 'बेटा ! तुमने इसको जिला लिया, नहीं तो मैं निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसकी माँ स्वर्ग में बैठी हुई तुम्हें आशीर्वाद दे रही है।

सूर्यप्रकाश की आँखें उस वक्त भी सजाल हो गई थी।

मैंने पूछा-मोहन भी तुम्हें बहुत प्यार करता होगा ?

सूर्यप्रकाश के सजल नेत्रों में हसरत से भरा हुआ आनन्द चमक उठा, बोला - वह मुझे एक मिनट के लिए भी न छोड़ता था। मेरे साथ बैठता, मेरे साथ खाता, मेरे साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था।

आह। वह संसार में नही है। मगर मेरे लिए वह अब भी उसी तह जीता-जागता है। मैं जो कुछ हूँ, उसी का बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधान की भाँते मेरा पथ-प्रदर्शक न बन जाता, तो शायद आज मैं किसी जेल में पड़ा होता। एक दिन मैने कह दिया था - अगर तुम रोज नहा न लिया करोगे तो मैं तुमसे न बोलूँगा। नहाने से वह न-जाने क्यों जी चुराता था। मेरी इस धमकी का फल वह हुआ कि वह नित्य प्रात-काल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ही ठंडी हवा चले ; लेकिन वह स्नान अवश्य करता था। देखता रहता था, मैं किस बात से खुश होता हूँ। एक दिन मैं कई मित्रों के साथ थियेटर देखने चला गया, ताकीद कर गया था कि तुम खाना खाकर सो रहना। तीन बजे रात को लौटा, तो देखा कि वह बैठा हुआ है ! मैने पूछा - तुम सोये नहीं ? बोला-नींद नहीं आई। उस दिन से मैने थियेटर जाने का नाम न लिया। बच्चों में प्यार की जो एक भूख होती है - दूध, मिठाई और खिलौनों से भी ज्यादा मादक-जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती, मोहन की वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराने वाली सारस की आवाज की तरह वह सदैव उसकी नसों में गूँजा करती थी। जैसे भूमि पर फैसी हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहन का था। वह मुझसे ऐसा चिपट गया था कि पृथक किया जाता, तो उसकी कोमल वेल के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब मेरे जीवन में प्रकाश की एक रेखा डालकर अन्धकार में विलीन हो गया। उस जीर्ण काया में कैसे-कैसे अरमान भरे हुए थे। कदाचित् ईश्वर ने मेरे जीवन में अवलम्ब की सृष्टि करने के लिए उसे भेजा था। उद्देष्य पूरा हो गया तो वह क्यों रहता।

४

'गर्मियों की तातील थी। दो तातीलों में मोहन मेरे ही साथ रहा था। मामाजी के आग्रह करने पर भी घर न आया। अबकी कालेज के छात्रों

ने काश्मीर-यात्रा करने का निश्चय किया और मुझे उसका अध्य
बनाया। काश्मीर यात्रा की अभिलाषा मुझे चिरकाल से थी। इसी अव
को गनीमत समझा। मोहन को मामाजी के पास भेजकर मैं काश्मीर च
गया। दो महीने के बाद लौटा, तो मालूम हुआ मोहन बीमार है। काश्
में मुझे बार-बार मोहन की याद आती थी और जी चाहता था, ल
जाऊँ। मुझे उस पर इतना प्रेम है, इसका अन्दाज मुझे काश्मीर जा
हुआ; लेकिन मित्रों ने पीछा न छोड़ा। उसकी बीमारी की खबर पाते
मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुँचा। मुझे देख
ही उसके पीले और सूखे हुए चेहरे पर आनन्द की स्फूर्ति झलक पड़ी।
दौड़कर उसके गले से लिपट गया। उसकी आँखों में वह दूरदृष्टि और चे
पर वह अलौकिक आभा थी जो मँडराती हुई मृत्यु की सूचना देती है। म
आवेश से काँपते हुए स्वर में पूछा-यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन ?
ही महीने में यह नौबत पहुँच गई ? मोहन ने सरल मुस्कान के साथ क
- 'आप काश्मीर की सैर करने गये थे, मैं आकाश की सैर करने जा र
हूँ।'

'मगर यह दुःख की कहानी कह कर मैं रोना और रुलाना न
चाहता। मेरे चले जाने के बाद मोहन इतने परिश्रम से पढ़ने लगा मा
तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गई थी कि साल भर की पढ़
दो महीने में समाप्त कर ले और स्कूल खुलने के बाद मुझसे इस श्रम
प्रशंसारूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह पीठ ठोकूँगा, शाबाशी दूँग
अपने मित्रों से बखान करूँगा, इन भावनाओं ने अपने सारे बालोचि
उत्साह और तल्लीनता से उसे वशीभूत कर लिया। मामाजी को दफ्तर
कामों से इतना अवकाश कहाँ कि उसके मनोरंजन का ध्यान रखें। शा
उसे प्रतिदिन कुछ-न-कुछ पढ़ते देखकर वह दिल में खुश होते थे। उ
खेलते देखकर वह जरूर डाँटते। पढ़ते देखकर भला क्या कहते। फल
हुआ कि मोहन को हल्का-हल्का ज्वर आने लगा, किन्तु उस दशा में
उसने पढ़ना न छोड़ा। कुछ और व्यतिक्रम भी हुए, ज्वर का प्रकोप अ

भी बढ़ा ; पर उस दशा में भी ज्वर की दशा में भी ज्वर कुछ हल्का हो जाता, तो किताबें देखने लगता था। उसके प्राण मुझमें ही बने रहते थे। ज्वर की दशा में भी नौकरों से पूछता-भैया का पत्र आया ? वह कब आयेंगे ? इसके सिवा और कोई दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी काश्मीर-यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी, तो उधर जाने का नाम भी न लेता। उसे बचाने के लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैने सब किया ; किन्तु बुखार टाइफायड था, उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवन के स्वप्न मेरे लिए किसी ऋषि के आशीर्वाद बनकर मुझे प्रोत्साहित करने लगे और यह उसी का शुभफल है कि आज आप मुझे इस दशा में देख रहे हैं। मोहन की बाल अभिलाषाओं को प्रत्यक्ष रूप में लाकर यह मुझे संतोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी कि जिसने कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी मेरा बेड़ा पार लगाया ; नहीं तो मैं आज भी वही मंदबुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरत से आप चिढ़ते थे।'

उस दिन से में कई बार सर्यूप्रकाश से मिल चुका हूँ। वह जब इस तरफ आ जाता है तो बिना मुझसे मिले नहीं जाता। मोहन को अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव-प्रकृति का यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।

जयशंकर प्रसाद

कवि और कथाकार जयशंकर प्रसाद का काव्य और कथा में अपना विशेष स्थान है। उन्होंने जिस प्रकार से नारी को श्रद्धा रूप में प्रकट किया है उसमें उनकी अपनी ही विशेषता दिखाई देती है। उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं को ही काव्य और कथा में अपनाया है। अशोक, तिष्यरक्षिता और कुनाल इस कहानी के पात्र हैं। अशोक के मस्तिष्क में हिंसा की ज्वाला जल रही है। वह जैन धर्म को नष्ट करना चाहता है। समय का लाभ उठा तिष्यरक्षिता कुनाल को राज्य से बाहर करवाने में सफल होती है और फिर उसकी दोनों आंखें भी निकलवा देती है। कुनाल किसी प्रकार का विरोध नहीं करता। जब अशोक को इस घटना का पता चलता है तो वह तिष्य रक्षिता को मृत्यु दंड की आज्ञा देते हैं। कुनाल को आसन पर बिठाया जाता है और धर्मरक्षिता महल में चली जाती है। इस घटना ने अशोक को हिंसा न करने का मार्ग दिखलाया और बाद में बौद्ध के अहिंसा मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है।

अशोक

जयशंकर प्रसाद

पूत-सलिला भागीरथी के तट चंद्रलोक में महराज चकवर्ती अशोक टहल रहे हैं। थोड़ी दूरपर एक युवक खड़ा है। सुधाकर की किरणों के साथ नेत्र-तारावों को मिलाकर स्थिर दृष्टि से महाराज ने कहा-विजयकेतु, क्या यह बात सच है कि जैन लोगों ने हमारे बौद्ध-धर्माचार्य होने का जनसाधारण में प्रवाद फैलाकर उन्हें हमारे विरुद्ध उत्तेजित किया है ओर पोण्ड्वर्धन में एक बुद्धमूर्ति तोड़ी गयी है ?

विजयकेतु-महाराज, क्या आपसे भी कोई झूठ बोलने का साहब कर सकता है ?

अशोक-मनुष्य के कल्याण के लिए हमने जितना उद्योग किया, क्या वह सब व्यर्थ हुआ ? बौद्धधर्म को हमने क्यों प्रधानता दी ? इसीलिए कि शांति फैलेगी, देश में द्वेष का नाम भी न रहेगा, और उसी शांति की छाया में समाज अपने वाणिज्य, शिल्प और विद्या की उन्नति करेगा ? पर नही, हम देष रहे है कि हमारी कामना पूर्ण होने में अभी बाधाएँ है। हमे पहले उन्हें हटाकर नार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

विजयकेतु-देव। आपकी क्या आशा है ?

अशोक-विजयकेतु, भारत में एक समय वह था, अब कि इसी अशोक के नाम से लोग काँप उठते थे। क्यों ? इसीलिए कि वह बड़ा कठोर शासक था। पर वही अशोक जब से बौद्ध कहकर सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ है, उसके शासन को लोग कोमल कहकर भूलने लग गये हैं। अस्तु, तुमको चाहिए कि अशोक का आतंक एक बार फिर फैला दो ; और यह आज्ञा प्रचारित कर दो कि जो मनुष्य जैनों का साथी होगा, वह अपराधी होगा ;

और जो एक जैन का सिर काट लावेगा, वह पुरस्कृत किया जावेगा।

विजयकेतु-(काँपकर) जो महाराज की आज्ञा।

अशोक-जाओ, शीघ्र जाओ।

विजयकेतु चला गया। महाराज अभी वहीं खड़े है। नूपुर का कलनाद सुनाई पड़ा। अशोक ने चौककर देखा, तो बीस-पच्चीस दासियों के साथ महारानी तिष्यरक्षिता चली आ रही हैं।

अशोक-प्रिये ! तुम यहाँ कैसे ?

तिष्यरक्षिता-प्राणनाथ ! शरीर से कहीं छाया अलग रह सकती है ? बहुत देर हुई, मैने सुना था कि आप आ रहे है ; पर बैठे-बैठे जी घबड़ा गया कि आने में क्यों देर हो रही है। फिर दासी से ज्ञात हुआ कि आप महल के नीचे बहुत देर से टहल रहे है। इसीलिए मैं स्वयं आपके दर्शन के लिए चली आई। अब भीतर चलिए।

अशोक-मैं तो आ ही रहा था। अच्छा चलो।

अशोक और तिष्यरक्षिता समीप के सुन्दर प्रसाद की ओर बढ़े। दासियाँ पीछे थीं।

2

राजकीय कानन में अनेक प्रकार के वृक्ष, सुरभित सुमनों से झूम रहे है। कोकिला भी कूक-कूक कर आम की डालों को हिलाये देती है। तब-वसंत का समागम है। मलयानिल इठलाता हुआ कुसुम-कलियों को ठुकराता जा रहा है।

इसी समय कानन-निकटस्थ शील के झरने के पास बैठकर एक युवक जल-लहरियों की तरंग-गंगी देख रहा है। युवक बड़े सरल विलोकन से कृत्रिम जल-प्रताप को देख रहा है। उसकी मनोहर लहरियाँ जो बहुत ही जल्दी-जल्दी लीन हो स्रोत में मिलकर सरल पथ का अनुकरण करती

उसे बहुत ही भली मालूम हो रही हैं। पर युवक को यह नहीं मालूम उसकी सरल दृष्टि और सुन्दर अवयव से विवश होकर एक रमणी अपने म पवित्र पद से च्युत होना चाहती है।

दैखो, उस लता-कुंज में पत्रियों की ओट में, दो नीलमणि कें समान णतारा चमककर किसी अदृश्य आश्चर्य का पता बता रहे है। नहीं-नहीं, वो, चंद्रमा में भी कहीं तारे रहते हैं ? वह तो किसी सुंदरी के मुख-कमल आभास है।

युवक अपने आनंद में मग्न है। उसे इसका कुछ भी ध्यान नहीं है कोई व्याघ्र उसकी ओर अलक्षित होकर वाण चला रहा है। युवक उठा, र उसी कुंज की ओर चला। किसी प्रच्छन्न शक्ति की प्रेरण से वह उसी ना-कुंज की ओर बढ़ा। किन्तु उसकी दृष्टि जब भीतर पड़ी, तो वह वाक् है गया। उसके दोनों हाथ आप जुड़ गये। उसका सिर स्वयं अवनत गया।

रमणी स्थिर होकर खड़ी थी। उसके हृदय में उद्वेग और शरीर में कंप । धीरे-धीरे उसके होंठ हिले और कुछ मधुर शब्द निकले। पर वे शब्द ष्ट होकर वायुमंडल में लीन हो गये। युवक का सिर नीचे ही था। फिर वती ने अपने को संभाला, और बोली-कुनाल, तुम यहाँ कैसे ? अच्छे हो ?

उत्तर में कुनाल ने कहा-माताजी की कृपा से।

युवती मंद मुस्कान के साथ बोली-मैं तुम्हें देर से यहाँ छिपकर देख ी हूँ।

कुनाल-महारानी तिष्यरक्षिता को छिपकर मुझे देखने की क्या ावश्यकता है ?

तिष्यरक्षिता-(कुछ कंपित स्वर से) तुम्हारे सौंदर्य से विवश कर।

कुनाल-(विस्मित तथा भयभीत होकर) पुत्र का सौंदर्य तो माता ही का दिया हुआ है।

तिष्यरक्षिता-नहीं कुनाल, मैं तुम्हारी प्रेम-भिखारिनी हूँ, राजरानी नहीं हूँ, और न तुम्हारी माता हूँ।

कुनाल-(कुंज से बाहर निकालकर) माताजी, मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिए, और अपने इस पाप का शीघ्र प्रायश्चित कीजिये। जहाँ तक संभव होगा, अब आप इस पाप-मुख को कभी न देखेगी।

इतना कहकर शीघ्रता से वह युवक राजकुमार कुनाल, अपनी विमाता की बात सोचता हुआ, डपवन के बाहर निकल गया। पर तिष्यरक्षिता किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर वहीं तब तक खड़ी रही, जब तक किसी दासी के भूषम-शब्द ने उसकी मोह-निद्रा को भंग नही किया।

3

श्रीनगर के समीपवर्ती कानन में एक कुटीर के द्वार पर कुनाल बैठा हुआ ध्यानमग्न है। उसकी सुशील पत्नी उसी कुटीर में कुछ भोजन बना रही है।

कुटीर स्वच्छ तथा उसकी भूमि परिष्कृत है। शांति की प्रबलता के कारण पवन भी उसी धीरे-धीरे चल रहा है।

किंतु वह शांति देर तक न रही, क्योंकि एक दोड़ता हुआ मृगशावक कुनाल की गोद में आ गिरा, जिससे उसके ध्यान में विग्न हुआ, और वह खड़ा हो गया। कुनाल ने उस मृग-शावक को देखकर समझ कि कोई व्याघ्र भी इसके पीछे आता ही होगा। पर जब कोई उसे न दीख पड़ा, तो उसने उस मृगशावक को अपनी-स्त्री 'धर्मरक्षिता' को देकर कहा-प्रिये ! क्या तुम इसको बच्चे की तरह पालोगी ?

धर्मरक्षिता-प्राणनाथ, हमारे ऐसे वनचारियों को ऐसे ही बच्चे चाहिए।

कुनाल-प्रिये ? तुमको हमारे साथ बहुत कष्ट है।

धर्मरक्षिता-नाथ, इस स्थान पर यदि सुख न मिला, तो मैं समझूंगी कि संसार में भी कहीं सुख नहीं है।

कुनाल-किंतु प्रिये, क्या तुम्हें वे सब राज-सुख याद नहीं आते ? क्या उनकी स्मृति तुम्हें नहीं सताती ? ओर, क्या तुम अपनी मर्म-वेदना से निकलते हुए आँसुओं को रोक नहीं लेतीं। या वे सचमुच हैं ही नहीं ?

धर्मरक्षिता-प्रणघार ? कुछ नहीं है। यह सब आपका प्रेम है। मेरा हृदय जितना इस शांत वन में आनंदित है, उतना कहीं भी न रहा। भला ऐसे स्वभाव-वर्धित, सरल-सीधे और सुमनवाले साथी कहाँ मिलते ? ऐसी मृदुला लताएँ, जो अनायास ही चरण को चूमती है, कहाँ उस जनरव से भरे राजकीय नगर में मिली थीं ? नाथ, और सच कहना, (मृग को चूमकर) ऐसा प्यारा शिशु भी तुम्हें आज तक कहीं मिला था ? तिस पर भी आपको अपनी विमाता की कृपा से जो दुःख मिलता था, वह भी यहाँ नहीं है। फिर ऐसा सुखमय जीवन और कौन होगा ?

कुनाल के नेत्र आँसुओं से भर आये, और बह उठकर टहलने लगे। धर्म-रक्षिता भी अपने कार्य में लगी। मधुर पवन भी उस भूमि में उसी प्रकार चलने लगा। कुनाल का हृदय अशांत हो उठा, और वह टहलता हुआ कुछ दूर निकल गया। जब नगर का समीपवर्ती प्रांत उसे दिखाई पड़ा, तब वह रूक गया और उसी ओर देखने लगा।

4

पाँच-छः मनुष्य दौड़ते हुए चले आ रहे हैं। वे कुनाल के पास पहुँचना ही चाहते थे कि उनके पीछे बीस अश्वारोही दीख पड़े। वे सब-

के-सब कुनाल के समीप पहुँचे। कुनाल चकित दृष्टि से उन सबको देख रहा था।

आगे दौड़कर आनेवालों ने कहा-महाराज, हम लोगों को बचाइये।

कुनाल उन लोगों को पीछे करके आप आगे डटकर खड़ा हो गया। वे अश्वारोही भी उस युवक कुनाल के अपूर्व तेजोमय स्वरूप को देखकर सहमकर, उसी स्थान पर खड़े हो गये। कुनाल ने उन अश्वारोहियों से पूछा-तुम लोग इन्हें क्यों सता रहे हो ? क्या इन लोगों ने कोई ऐसा कार्य किया है, जिससे ये लोग न्यायतः दंडभागी समझे गये है ?

एक अश्वारोही, जो उन लोगों का नायक था, बोला-हम लोग राजकीय सैनिक है और राजा की आज्ञा से इन विधर्मी जैनियों का वध करने के लिए आये हैं। पर आप कौन हैं, जो महाराज चकवर्ती देवप्रिय अशोकदेव की आज्ञा का विरोध करने पर उद्यत है ?

कुनाल-चकवर्ती अशोक ! वह कितना बड़ा राजा है ?

नायक-मूर्ख ! क्या तू अभी तक महाराज अशोक का पराक्रम नही जानता, जिन्होंने अपने प्रचंड भुजदंड के बल से कलिंग विजय किया है ? और, जिनकी राज्य-सीमा दक्षिण में केरल और मलयगिरि, उत्तर में सिंधुकोश-पर्वत, तथा पूर्व और पश्चिम में किरात-देश और पटल है। जिनकी मैत्री के लिए यवन-नृपति लोग उद्योग करते रहते हैं, उन महाराज को तू भलीभांति नहीं जानता ?

कुनाल-परंतु इससे भी बड़ा कोई साम्राज्य है, जिसके लिए किसी राज्य की मैत्री की आवश्यकता नहीं है।

नायक-इस विवाद की आवश्यकता नहीं है, हम अपना काम करेगे।

कुनाल-तो क्या तुम लोग इन अनाथ जीवों पर कुछ दया न करोगे ?

इतना कहते-कहते राजकुमार को कुछ कोध आ गया, नेत्र लाल हो गये। नायक उस तेजस्वी मूर्ति को देखकर एक बार फिर सहम गया।

कुनाल ने कहा-अच्छा, यदि तुम न मानोगे, तो यहाँ के शासक से जाकर कहो कि राजकुमार कुनाल तुम्हें बुला रहे हैं।

नायक सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। तब उसने अपने एक साथी की ओर देखकर कहा-जाओ, इन बातों को कहकर, दूसरी आज्ञा लेकर जल्द आओ।

अश्वारोही शीघ्रता से नगर की ओर चला। शेष सब लोग उसी स्थान पर खड़े थे।

थोड़ी देर में उसी ओर से दो अश्वरोही आते हुए दिखाई पड़े। एक तो वही था, जो भेजा गया था, और दूसरा उस प्रदेश का शासक था। समीप आते ही वह घोड़े पर से उतर पड़ा और कुनाल का अभिवादन करने के लिए बढ़ा। पर कुनाल ने रोककर कहा-बस, हो चुका, मैंने आपको इसलिए कष्ट दिया है कि इन निरीह मनुष्यों की हिंसा की जा रही है।

शासक-राजकुमार ! आपके पिता की आज्ञा ही ऐसी है, ओर आपका यह वेश क्या है ?

कुनाल-इसके पूछने की कोई आवश्यकता नहीं, पर क्या तुम इन लोगों को मेरे कहने से छोड़ सकते हो ?

शासक-(दुःखित होकर) राजकुमार, आपकी आज्ञा हम कैसे टाल सकते है, (ठहरकर) पर एक और बड़े दुःख की बात है।

कुनाल-वह क्या ?

शासक ने एक पत्र अपने पास से निकालकर कुनाल को दिखलाया। कुनाल उसे पढ़कर चुप रहा, और थोड़ी देर बाद बोला-तो तुमको इस आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिए।

शासक-पर, यह कैसे हो सकता है ?

कुनाल-जैसे हो, वह तो तुम्हें करना हो होगा।

शासक-किंतु राजकुमार, आपके इस देव-शरीर के दो नेत्र-रत्न निकालने का बल मेरे हाथों में नही है। हां, मैं अपने इस पद का त्याग कर सकता हूँ।

कुनाल-अच्छा, तो तुम मुझे इन लोगों के साथ महाराज के समीप भेज दो।

शासक ने कहा-जैसी आज्ञा।

5

पौण्ड्रवर्धन नगर में हाहाकार मजा हुआ है। नगर-निवासी प्रायः उद्विग्न हो रहे है। पर विशेषकर जैन लोगों ही में खलबली मजी हुई है। जैन-रमणियाँ, जिन्होने कभी घर के बाहर पैर भी नहीं रक्खा था, छोटे शिशुओं को लिये हुए भाग रही हैं। पर जाये कहाँ ? जिधर देकती है, उधर ही सशस्त्र उन्मत्त काल बौद्ध लोग उन्मत्तों की तरह दिखाई पड़ते हैं। देखो, वह स्त्री, जिसके केश परिश्रम से खुल गये-गोद का शिशु अलग मजलकर रो रहा है, थककर एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी है ; अरे देखो ! दुष्ट निर्दय वहाँ भी पहुँच गये, और उस स्त्री को सताने लगे।

युवती ने हाथ जोड़कर कहा-आप लोग दुःख मत दीजिये। फिर उसने एक-एक करके अपने सब आभूषण उतार दिये और वे दुष्ट उन सब अलंकारों को लेकर भाग गये। इधर वह स्त्री निद्रा से क्लान्त होकर उसी वृक्ष के नीचे सो गयी।

उधर देखिये, वह एक रथ चला जा रहा है, और उसके पर्दे हटकर बता रहे है कि उसमें स्त्री और पुरुष तीन-चार बैठे हैं। पर सारथी उस ऊँची-नीजी पथरीली भूमि में भी उन लोगों की ओर बिना ध्यान दिये रथ शीघ्रता से लिये जा रहा है। सूर्य की किरणें पश्चिम में पीली हो गयी हैं। चारों ओर उस पथ में शांति है। केवल उसी रथ का शब्द सुनाई पड़ता है, जो अभी उत्तर की ओर चला जा रहा है।

थोड़ी ही देर में वह रथ सरोवर के समीप पहुँचा और रथ के घोड़े हांफते हुए थककर खड़े हो गये। अब सारथी भी कुछ न कर सका और उसको रथ के नीचे उतरना पड़ा।

रथ को रुका जानकर भीतर से एक पुरुष निकला और उसने सारथी से पूछा-क्यों, तुमने रथ क्यों रोक दिया।

सारथी-अब धोड़े नहीं चल सकते।

पुरुष-तब तो फिर बड़ी विपत्ति का सामना करना होगा ; क्योंकि पीछा करनेवाले उन्मत्त सैनिक आ ही पहुँचेगे।

सारथी-तब क्या किया जाय ? (सोचकर) अच्छा, आप लोग इस समीप की कुटी में चलिये, यहाँ कोई महात्मा हैं, वह अवश्य आप लोगों को आश्रय देंगे।

पुरुष ने कुछ सोचकर सब आरोहियों को रब पथ से उतारा, और वे सब लोग उसी कुटी की ओर अग्रसर हुए।

कुटी के बाहर एक पत्थर पर अधेड़ मनुष्य बैठा हुआ है। उसका परिधेय वस्त्र भिक्षुओं के समान है। रथ पर के लोग उसी के सामने जाकर खड़े हुए। उन्हें देखकर वह महात्मा बोले-आप लोग कौन है और क्यों आये हैं ?

उसी पुरुष ने आगे बढ़कर, हाथ जोड़कर कहा-महात्मन्, हम लोग जैन हैं और महाराज अशोक की आज्ञा से जैन लोगों का सर्वनाश किया जा रहा है। अतः हम लोग प्राण के भय से भागकर अन्यत्र जा रहे हैं। पर मार्ग में घोड़े थक गये, अब ये इस समय चल नहीं सकते। क्या आप थोड़ी देर तक हम लोगों को आश्रय दीजियेगा ?

महात्मा थोड़ी देर सोचकर बोले-अच्छा, आप लोग इसी कुटी में चले जाइये।

स्त्री-पुरुषों ने आश्रय पाया।

अभी उन लोगों को बैठे थोड़ी ही देर हुई है कि अकस्मात् अश्व-पद-शब्द ने सबको चकित और भयभीत कर दिया। देखते-देखते दस अश्वारोही उस कुटी के सामने पहुँच गये। उनमें से एक महात्मा की ओर लक्ष्य करके बोला-ओ भिक्षु, क्या तूने अपने यहाँ भागे हुए जैन विधर्मियों को आश्रय दिया है ? समझ रख, तू हम लोगों से बहाना नहीं कर सकता, क्योंकि उनका रथ इस बात का ठीक पता दे रहा है।

महात्मा-सैनिकों, तुम उन्हें लेकर क्या करोगे ? मैंने अवश्य न दुखियों को आश्रय दिया है। क्यों व्यर्थ नर-रक्त से अपने हाथों को रंजित करते हो ?

सैनिक अपने साथियों की ओर देखकर बोला-यह दुष्ट भी जैन ही है, ऊपरी बौद्ध बना हुआ है ; इसे भी मारो।

'इसे भी मारो' का शब्द गूंज उठा, और देखते-देखते उस महात्मा का सिर भूमि पर लोटने लगा।

इस कांड को देखते ही कुटी के स्त्री-पुरुष चिल्ला उठे। उन नर-

पिशाचों ने एक को भी न छोड़ा। सबकी हत्या की।

अब सब सैनिक धन खोजने लगे। मृत स्त्री-पुरुषों के आभूषण उतारे जाने लगे। एक सैनिक, जो उस महात्मा की ओर झुका था, चिल्ला उठा। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हुआ। सब सैनिकों ने देखा, उसके हाथ में एक अँगूठी है, जिस पर लिखा है 'सीताशोग'।

6

महाराज अशोक के भाई, जिनका पता नहीं लगता था, वही 'सीताशोक' मारे गये। चारों ओर उपद्रव शांत है। पौण्ड्रवर्धन नगर प्रशांत समुद्र की तरह हो गया है।

महाराज अशोक पाटलिपुत्र के साम्राज्य-सिंहासन पर विचारपति होकर बैठे है। राजसभा की शोभा तो कहते नहीं बनती। सुवर्ण-रचित बेल-बूटों की कारीगरी से, जिनमें मणि-माणिक्य स्वानुकूल मिटाये गये है-मौर्य-सिंहासन-मंदिर भारतवर्ष का वैभव दिखा रहा है, जिसे देखकर पारसीक सम्राट् 'दारा' के सिंहासन-मंदिर को ग्रीक लोग तुच्छ दृष्टि से देखते थे।

धर्माधिकारी, प्राड्विवाक, महामात्य, धर्म-महामात्य रज्जुक, और सेनापति, सब अपने-अपने स्थान पर स्थित है। राजकीय तेज का सन्नाटा सबको मौन किये है।

देखते-देखते एक स्त्री और एक पुरुष उस सभा में आये। सभास्थित सब लोगों की दृष्टि को पुरुष के अवनत तथा बड़े-बड़े नेत्रों ने आकर्षित कर लिया। किंतु सब नीरव है। युवक और युवती ने मस्तक झुकाकर महाराजा को अभिवादन किया।

स्वयं महाराजा ने पूछा-तुम्हारा नाम ?

उत्तर-कुनाल।

प्र०-पिता का नाम ?

उ०-महाराज चकवर्ती धर्माशोक।

सब लोग उत्कंठा और विस्मय से देखने लगे कि अब क्या होता है, पर महाराज का मुख कुछ भी विकृत न हुआ प्रत्युत और भी गंभीर स्वर से प्रश्न करने लगे।

प्र०-तुमने कोई अपराध किया है ?

उ०-अपनी समझ से तो मैंने अपराध से वचने का उद्योग किया था।

प्र०-फिर तुम किस तरह अपराधी बनाये गये ?

उ०-तक्षशिला के महासामंत से पूछिये।

महाराज की आज्ञा होते ही शासक ने अभिवादन के उपरांत एक पत्र उपस्थित किया, जो अशोक के कर में पहुँचा।

महाराज ने क्षण-भर में महामात्य से फिरकर पूछा-यह आज्ञा-पत्र कौन ले गया था, उसे बुलाया जाय।

पत्रवाहक भी आया और कंपित स्वर से अभिवादन करते हुए बोला-धर्मावतार यह पत्र मुझे महादेवी तिष्यरक्षिता के महल से मिला था, और आज्ञा हुई थी कि इसे शीघ्र तक्षशिला के शासक के पास पहुँचाओ।

महाराज ने शासक की ओर देखा। उसने हाथ जोड़कर कहा-महाराज, यही आज्ञा-पत्र लेकर गया था।

महाराज ने गंभीर होकर अमात्य से कहा-तिष्यरक्षिता को बुलाओ।

महामात्य ने कुछ बोलने की चेष्टा की किंतु महाराज के भृकुटिभंग ने उन्हें बोलने से निरस्त किया ; अब वह स्वयं उठे और चले।

7

महादेवी तिष्यरक्षिता राजसभा में उपस्थित हुई। अशोक ने गंभीर स्वर से पूछा-वह तुम्हारी लेखनी से लिखा गया है ? क्या उस दिन तुमने इसी कुकर्म के लिये राजमुद्रा छिपा ली थी ? क्या कुनाल के बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रों ने ही तुम्हें अपने निकलवाने की आशा देने के लिए विवश किया था ? अवश्य तुम्हारा ही यह कुकर्म है। अस्तु, तुम्हारी-जैसी स्त्री को पृथ्वी के ऊपर नहीं, किंतु भीतर रहना चाहिए।

सब लोग कांप उठे। कुनाल ने आगे बढ़ घुटने टेक दिये और कहा-क्षमा।

अशोक ने गंभीर स्वर से कहा-नहीं।

तिष्यरक्षिता उन्हीं पुरुषों के साथ गयी, जो लोग हमे जीवित समाधि देनेवाले थे। महामात्य ने राजकुमार कुनाल को आसन पर बैठाया और धर्मरक्षिता महल में गयी।

महामात्य ने एक पत्र और अंगूठी महाराज को दी। यह पौण्ड्रवर्धन के शासक का पत्र तथा वीताशोक की अंगूठी थी।

पत्र-पाठ करके और मुद्रा को देखकर वही कठोर अशोक विह्वल हो गये, ओर अवसन्न होकर सिंहासन पर गिर पड़े।

उसी दिन से कठोर अशोक ने हत्या की आज्ञा बंद कर दी, स्थान-स्थान पर जीबहिंसा न करने की आज्ञा पत्थरों पर खुदवा दी गयी।

कुछ ही काल के बाद महाराज अशोक ने उद्विग्न चित्त को शांत करने के लिए भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध स्थानों को देखने के लिए धर्म-यात्रा की।

यशपाल

कहानीकार यशपाल ने अनेक सामाजिक और व्यक्तिपरक उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। उच्च और मध्यवर्ग उनकी कथा का विषय रहा है। लेखक ने व्यक्ति के चारित्रिक गुणों का यथार्थ चित्रण आंका है। चार आने कहानी का मुख्य पात्र इर्शद हुसैन है। तालीम पाने पर भी उसे नौकरी नहीं मिलती है। टेनिस का खिलाड़ी होते हुए भी उस के जीवन की समस्या हल न हुई। राजा साहब बिन्दौर जो मंसूरी में रह रहे थे, नौकरी पाने के लिए वहाँ जाता है। एक खिलाड़ी के नाते उसे आदर तो मिलता है किन्तु नौकरी नहीं। क्योंकि उसकी नबाबी प्रतिष्ठा कें विपरीत था, नौकरी मांगना। उसे घर वापस जाना पड़ता है, परिस्थितिवश वह कुली को चार आने भी नहीं दे पाता है। सब कुछ सहकर भी नवाबी की प्रतिष्ठा की मेहराब से इंट खिसकी जा रही थी - 'केवल चार आने के रूप में।' लेखक ने मध्य वर्ग के इर्शद जैसे व्यक्ति का चित्रण किया है, जो परिस्थितियों से समझौता न कर, अपने आप को उच्च वर्ग का प्रतिनिधित समझता है, जो वस्तुतः नहीं है।

चार आने

यशपाल

इन्दौर के राजा साहब को खेलों से विशेष शौक था। दूसरे ालुकेदार और बड़े-बड़े आई० सी० एस० अफसरों की देखा-देखी वे अपने सेक्रेटरी के साथ जीमखाने का टूर्नामेन्ट देखने गए थे। खेल की ैतराबाजी से बड़े-बड़े अफसरों और रईस लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमकते देख, उन लोगों के मुख से निरन्तर वाह-वाह सुन, राज साहब को ी खेल से दिलचस्पी होने लगी।

सेक्रेटरी के कहने से राजा साहब ने इनहरे (singles) खेल के मुख्य विजयी के लिए ट्राफी (विजयपात्र) की घोषणा कर दी। खेल समाप्त होने र दूसरे बड़े आदमियों की तरह उन्होने भी खिलाड़ियों से हाथ मिलाया। राजा साहब को सन्तोष अनुभव हुआ, एक उचित काम किया ाया है।

तीसरे दिन सेक्रेटरी ने राजा साहब को अंग्रेजी का अखवार लाकर दिखाया। उसमें राजा साहब का चित्र था। चित्र में वे टेनिस के इकहरे खेल के विजयी खिलाड़ी मिस्टर इर्शाद से हाथ मिला रहे थे। समाचार पत्र के ो कालमों में, राजा साहब की कद्रदानी और उदारता की प्रशंसा के साथ खिलाड़ी कों विजयपात्र देने का समाचार छपा था। तब से टेनिस के खेल के प्रति राजा साहब के अनुराग की सीमा नहीं रही थी।

टेनिस के खेल सम्बन्धी अंग्रेजी शब्द निरन्तर उनकी जिह्वा पर हते। टेनिस के बल्लों (रैकटों) के वजन और गेंद बनाने वाली कम्पनियों के नाम उन्हें याद हो गए। किसी भी समाचार-पत्र में, किसी भी स्थान पर टेनिसमैच का समाचार प्रकाशित होने पर वे उसे पढ़ते या पढ़ाकर सुन

लेते। सफर में आधा दर्जन बढ़िया टेनिस रैकेट उनके साथ रहते। मसूरी में रहते समय खिलाड़ियों का धारीदार कोट अपने स्थूल, शिथिल शरीर पर कसे ये प्रत्येक सन्ध्या छः आदमियों से ढकेली जाती रिक्शा पर सवार हो टेनिस के मैच में पहुँच जाते। वे टेनिस के संरक्षत समझे जाने लगे।

इर्शदहुसैन के लिए जीवन की सबसे मूल्यवान् और प्रिय वस्तु थी उसका टेनीस. का रैकेट। ऊँची कीमत का वह रैकेट इर्शाद को कालेज के टूर्नामेन्ट में विजयी होने के पुरस्कार में मिला था। इस रैकेट की बदौलत सम्मानित समाज के बड़े से बड़े महारथियों तक उसकी पहुँच हो पाती थी। बड़े से बड़े आई० सी० एस० अफसर, सर और तालुकेदार मुस्करा कर उससे हाथ मिलाते। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में कोई चमत्कार न दिखा सकने पर भी उसका आदर और महत्व था। उसके अपने घर में समृद्धि न होने पर भी समृद्ध लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते। जस्टिस विकसन ने उससे हाथ मिलाया तो कलेक्टर साहब ने भी शेक-हैण्ड किया। राजा साहब बिन्दौर ने उसे 'कार्लटन' होटल में चाय पीने के लिए निमन्त्रित किया तो बिल्लूर के नवाब साहब ने भी उसे 'रायल' में बुलाया।

टेनिस के जोर पर समाज में सम्मान पाकर भी इर्शदहुसैन के जीवन की समस्या हल न हुई। वह घर में बड़ा लड़का था। घर के बोझ को सिर लिए बिना चारा न था। इर्शाद के पिता के समय प्रश्न था, घर और खानदान की इज्जत की रक्षा का नवाबी के समय के जीवन-साधन अब न रहे थे परन्तु खानदान की इज्जत चली जाती थी। इर्शाद के पिता मियाँ शहनशाह हुसैन जजी में पेशकार थे। इस नौकरी से उन्होने घर को बहुत सम्भाला। भाइयों को तालीम दी, घर का मकान कुर्क होने से बचाया। इर्शादहुसैन के तीनों चाचा घर का कर्ज और इज्जत बड़े के सिर ओढ़ा, एक के बाद एक अलग जा बसे। मियाँ शहनशाहहुसैन से बड़ी-बड़ी उम्मीदे

ीं परन्तु उन उम्मीदों के पूरी होने से पहले ही अल्लाताला ने उन्हें अपने
स बुला लिया।

कहावत है - 'शेर भूखा मर जाता है, घास नहीं खाता।' वैसे ही
ानदानी शरीफ इन्सान भूखा रह कर भी समाज में अपना सिर नीचा नहीं
ोने देता। मियाँ शहनशहहुसैन की मृत्यु के बाद घर के भीतर सैकड़ों
सीबतें सह कर भी इर्शाद और उनके छोटे भाइयों की तालीम जारी
ही। घर की औरतों के बाहर निकलने का काम न था। कभी वे घर से
ेकलतीं तो पर्दे में टाँगा बिल्कुल ड्योढ़ी से सटा खड़ा किया जाता।
धिया सफेद चादरें टाँगे के आगे-पीछे तन जातीं। बैठक में कभी मेहमानों
ं आने परबेगम साहिबा चाँदी को कामदाब तश्तरी में पान और खुशबूदार
म्बाकू भेजना न भूलतीं।

कुँजड़े घर की ड्योढ़ी पर आवाज लगाते तो भीतर से कहला दिया
ाता-भई, सब्जी बाजार से आ गयी है। मछली वाली के उत्तर मिलता-
छली ले ली गयी है। कसाई आवाज लगाता तो उसे उत्तर मिलता-गोश्त
ी लिया गया है। फेरी बेकार होने पर इन लोगों ने पुकार लगाना छोड़
दिया। पान-ढोली वाले की बन्द न हुई। उधार के लिए झंझट होती थी
रंतु घर में पान का खर्च बन्द न हो सकता था।

मियाँ शहनशाहहुसैन पर वर्षों से लाला महादेव प्रसाद का तीन
जार का कर्ज था। मियाँ साल-छः महीने में सूद की रकम किसी न किसी
रह अदा कर ही देते थे। उम्मीद थी, लड़के के बरसिरे रोजगार हो जाने
र कर्ज अदा कर देंगे और अपने पुश्तैनी मकान को नये सिरे से
नायेंगे। मियाँ शहनशाहहुसैन की मृत्यु के बाद सूद की रकम मूल में
ेलने लगी। चतुर लालाजी ने पिता के कर्जे के कागज गिरवी हो गया।
ालाजी स्वर्गीय मियाँ शहनशाहहुसैन की स्मृति का ख्याल कर, उनके बेटे

से ७००) सालाना सूद के बजाय मकान के किराये के रूप में ६००) रुपया लेने लग गए।

पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाने का दर्द इर्शाद और उनकी वाल्दा दोनों को ही कम न था, लेकिन सूदखोर महाजन से मुकद्दमे-बाजी कर कचहरी जाने की बेइज्जती कैसे बर्दाश्त की जाती। मकान के हिस्से में बसने वाले किरायेदारों से मिलने वाले किराये और महादेवप्रसाद को दिये जाने वाले किराये के अन्तर से ही किसी तरह, ढक-ओढ़ कर शरीफ खानदान का गुजारा चलता था। जाहिरा, हवेली उनकी ही थी। लाला महादेव प्रसाद शरीफ इन्सान ठहरे। उन्होंने वायदा कर लिया था, पाँच-छः बरस जब तक ईशाद बी० ए० पास कर कहीं नौकरी नहीं कर लेते, वे इस मामले में कुछ न बोलेंगे।

बी० ए० पास कर और टेनिस के मैदान में नाम कमा लेने पर भी अच्छी नौकरी पा सकने का मसला हल न हुआ। रोजगार के तौर पर सिवाय नौकरी के दूसरी राह न थी। मिस्टर इर्शाद की हवेली से उनकी हैसियत जाँचने वाले लोग अक्सर यह भी कह बैठते- 'मियाँ, फिलहाल जमाने में नौकरी आसान नहीं और फिर नौकरी में रखा ही क्या है ? वही महीने में गिनी-चुनी रुपल्ली। कोई रोजगार ही करो !'

इर्शाद को यूनिवर्सिटी की शिक्षा और टेनिस के खिलाड़ी के नाते बड़े आदमियों से दोस्ती और सम्मान का ख्याल कर दूसरे लोग सलाह देते - वल्लाह, क्या बनिये-बक्काल का काम करोगे ? तुम्हारे खानदान ने हमेशा हुकूमत की है। बड़े-बड़े अफसरान, हुक्मरान राजा-नव्वाबों तक तुम्हारी पहुँच है। डिप्टी-कलक्टरी तुम्हारे लिए कौन बड़ी बात है ? इस सब आशावाद के बावजूद इर्शाद जानते थे, किसी भी अच्छी नौकरी की राह में कम्पीटीशन की कसौटियाँ हैं, जहाँ उम्मीदवारों को पहले दूसरे डिवीजन की चलनियों में छाना जाता है। सिफारिश से बहुत कुछ हो सकता है परन्तु

सिफारिश की ड्योढ़ी तक पहुँचना भी तो आसान नहीं। यूँ सेक्रेटेरियट की पचास-साठ की नौकरी के लिए किसी की सिफारिश अथवा खुशामद करें तो उसमें अपनी हेठी।

सोच-सोच कर मिस्टर इर्शाद ने निश्चय किया-उसके लिए नौकरी की गुँजाइश सरकारी महकमों में नही, राजा-रजवाड़ों में ही हो सकती है। जहाँ केवल परीक्षा का ही नहीं, गुण का भी मूल्य हो। बार-बार उन्हें बिल्लूर के नवाब साहब और बिन्दौर के राजा साहब का ख्याल आ जाता। अन्तरंग मित्रों ने समझाया भी - जब वाकफियत है तो उससे फायदा न उठाने का मतलब क्या ? ऐसे लोगों के यहाँ बीसियों मैनेजर और सेक्रेटरी पड़े रहते हैं। बीसियों दूसरी रियासतों और रजवाड़ों में ऐसे लोगों की रिश्तेदारियाँ और लिहाज रहते हैं। उन्हें ख्याल हो जाय तो तीन-चार सौ रुपया माहवार कौन बड़ी बात है, लेकिन बड़े आदमी भी इन्सान का ख्याल उसकी हैसियत से ही करते हैं।

मिस्टर इर्शाद को मालूम था, राजा साहब बिन्दौर मसूरी में हैं। अखबारों के खेल-समाचार के कालमों में उनका नाम छपता रहता था। साहस कर इर्शाद ने एक पत्र अंग्रेजी में टाइप कर राजा साहब को भेजा-शायद किसी काम से उन्हें मसूरी जाना पड़े ! यदि ऐसा हुआ तो वह राजा साहब के दर्शन अवश्य करेंगे। बहुत जल्द ही राजा साहब का उत्तर आया-इर्शाद साहब अवश्य मसूरी तशरीफ लायें और राजा साहब के मेहमान बनें।

\+ \+ \+

मित्रों ने इर्शाद को समझाया-जीवन में ऐसे अवसर कम आते हैं, ऐसे अवसर पर चूकना मूर्खता है। मिस्टर इर्शाद कुछ कर्ज लिया। दो नई पतलूनें और कमीजें बनवायीं। टेनिस के धारीदार कोट और पतलून पर सफाई और इस्त्री करवायी और रैकेट पर वार्निश। एक मित्र से सूटकेस

उधार लिया। लखनऊ से मसूरी तक थर्ड-क्लास का किराया था लगभग आठ रुपये। सफर थर्ड-क्लास में भी हो सकता था परन्तु मसूरी की हैसियत बरकरार रखना जरूरी था। अधिक से अधिक जितना भी हो सका, पूरे साठ रुपये जेब में डाल इर्शाद घर से चल पड़े।

मसूरी में मोटर के अड्डे 'सनीव्यू' पर मोटर से उतर, सूटकेस और बिस्तर कुली के सिर पर उठवा इर्शाद राह पूछते, राजा साहब बिन्दौर की कोठी पहुँच सकते थे, परन्तु राजा साहब बिन्दौर का नाम सुनते ही कोठी पर पहुँचा देने के लिए आतुर रिक्शा-कुलियों ने इर्शाद को घेर लिया। औचित्य और सम्मान का ख्याल कर इर्शाद रिक्शा पर लद कर चले और कुली उनका असबाब लेकर पीछे-पीछे।

कोठी पर राजा साहब ने तपाक से इर्शाद का स्वागत किया। उन्हें बरामदे में कुर्सी पर बैठा, उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया। राजा साहब बिन्दौर ने इर्शाद की प्रशंसा में कहा - 'नव्वाब साहब टेनिस ऐसी खेलते हैं कि इनके सामने रैकेट हाथ में लेने में मजाल लखनऊ में तो कोई क्या करेगा।'

इर्शाद साहब को ढोकर लाने वाले रिक्सा-कुली एक ओर खड़े अपनी ओर दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इर्शाद के मन में निरन्तर जेब से पैसे निकाल कर देने का ध्यान था परन्तु उस उपस्थिति में इस बात को इतना महत्व देना उचित न जँचा राजा साहब का ध्यान दूसरी ओर होने पर इर्शाद उठे। जेब से पाँच रुपये का नोट निकाल एक कारिन्दे को थमाते हुए उन्होने कहा-'इन कुलियों को पैसे दे दिए जाएँ। वे देखते रहे कि नोट कुलियों के पास पहुँच गया।' बोझ उठाने वाले कुली ने भी आगे बढ़कर सलाम किया। कुली माथा छूकर अब भी कह रहे थे-'राजा लोगों के यहाँ से बखशीश।' कारिन्दे ने कुछ और सुनने से इन्कार करने के स्वर में कह दिया, 'बस ठीक है जाओ बाँट लो।' उस नोट से कुछ बचकर जेब में

वापिस लौटने की आशा इर्शाद को थी परन्तु वह उसे पी गए।

इर्शाद साहब के लिए अलग कमरा ठीक हो गया। वे राजा साहब के साथ मेज पर खाना खाते, चाय पीते, बढ़िया से बढ़िया सिगरेटों के डिब्बे हर समय सम्मुख खुले रहते। विशेष अभ्यास न होने पर भी वे देखा-देखी सिगरेट लगा लेते। राजा साहब के साथ उनकी रिश्ता भी चलती। टेनिस कोर्ट में उन्होंने अपने हाथ दिखाये। राजा साहब अपने मित्रों से उनका परिचय कराते ओर नव्वाब कह कर सम्बोधन करते।

इर्शाद राजा साहब के साथ हैकमेन, सेवायें और शार्लविली की पार्टियों और नाचों में जाते। प्रतिदिन सैकड़ों रुपया पार्टी, डांस और ड्रिंक की सूरत में बहता नजर आता। इस समृद्धि में इर्शाद के लिए तीन-चार सौ निकल आना कौन बड़ी बात थी ? प्रश्न था केवल उस ओर ध्यान जाने भर का। समृद्ध के अनुपात से जो जितना समृद्ध समझ जाता है उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है, उतने ही अधिक रुपये उसके लिए बहाये जाते हैं। इस परिस्थिति में रुपयों की कमी और गरीबी की चर्चा करने का साहस इर्शाद साहब के लिए सम्भव न था। किसी समय एकान्त देख वे इस सम्बन्ध में राजा साहब से बात करने का विचार करते रहे, परन्तु वह समय न आया और जब कभी कुछ मिनट के लिए एकान्त मिला भी तो असमृद्ध पहचाने जाकर सम्मान खो देने के भय ने गले को जैसे अवरुद्ध-सा कर दिया।

इर्शाद ने मन को समझाया, वह भीख नहीं माँगना चाहता। वह काम और मेहनत करने के लिए तैयार है परन्तु आँखें निरन्तर देख रही थीं - आदरसम्मान काम और मेहनत का नहीं बल्कि काम और मेहनत करने की आवश्यकता न होने का ही है। रुपये का सम्मान अवश्य है परन्तु रुपया पैदा करने वाले श्रम का निरादर ही है। एक सप्ताह तक अवसर से किसी भी प्रकार लाभ उठा सकने में अपने को असमर्थ पा, इर्शाद साहब ने राजा

साहब से लखनऊ लौट जाने की इजाजत चाही।

राजा साहब ने आग्रह किया- 'अभी दो चार रोज़ और ठहरिये !'

राजा साहब की इच्छा के अनुकूल सेक्रेटरी साहब ने सुझाया- 'नव्वाब साहब ट्रेनों में भीड़ का क्या हाल है, शायद ख्याल नहीं रहा ? तीन दिन से कम नोटिस पर तो सीट रिजर्व हो ही नहीं सकती !'

सीट रिजर्व होने या न हो सकने के प्रश्न की उपेक्षा के भाव से इर्शाद साहब ने उत्तर दिया - 'वाह, ऐसी कौन सी बात है ?'

उस उपेक्षा की चिन्ता न कर, अपनी उपयोगिता दिखाने के लिए टेलीफोन की ओर बढ़ते हुए सेक्रेटरी साहब ने रांजा साहब को संबोधन किया- 'हुजूर, नव्वाब साहब के लिए किस तारीख के लिए सीट रिजर्व करा दी जाय आज पाँच है !'

इर्शाद साहब की ओर देख राजा साहब ने फर्माया- 'ऐसी क्या जल्दी है, दो रोज तो और ठहरिये। छः और सात को रहिये। हाँ आठ के लिए करा दो !'

सेक्रेटरी साहब ने मसूरी में रेल के दफ्तर को फोन किया। उत्तर मिला, सीटें पूरे सप्ताह के लिए रिजर्व हो चुकी हैं। सेक्रेटरी के इस उत्तर से इर्शाद साहब को सान्त्वना हुई थी परन्तु सेक्रेटरी साहब यों पराजय स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। दुबारा फोन किया और जरा ऊँचे स्वर में बोले- 'सुनिये, हम राजा साहब बिन्दौर के यहाँ से बोल रहे हैं। राजा साहब फर्माते हैं, एक सीट की जरूरत है नब्वाब इर्शादहुसैन साहब के लिए, आठ तारीख को हावड़ा एक्सप्रेम में लखनऊ तक।'

अब की बार उत्तर भिन्न था। मुस्करा कर सेक्रेटरी साहब ने फर्माया- 'हुजूर को सलाम बोल रहे हैं और कहते हैं, टिकट अलग रख लिया है। आदमी भेज कर मँगा लीजिए।' टिकट की कीमत भी उन्होने बता दी

इकतालीस रुपये आठ आने।

इर्शाद साहब का चेहरा पीला पड़ जाना चाहता था। हृदय की सम्पूर्ण शक्ति और साहस से उन्होने चेहरे के भाव को सम्भाला। उनके लिए राजा साहब की मार्फत सीट रिजर्व हो चुकी थी, टिकट खरीद लिया गया। बयालिस रुपये तुरन्त जेब से न निकाल देने का अर्थ होता, अपने आपको उस सम्मान के लिए अनधिकारी प्रमाणित करना जो ऊँचे दर्जे में सफर करने वाले राजा साहब के अतिथि के रूप में उनका किया जा रहा था।

इर्शाद साहब के मसूरी से चलने के लिए राजा साहब ने दोपहर को एक अच्छी खासी विदाई की दावत (फेयरवेल लंच) टेनिस के खिलाड़ियों को दे ड़ाली। नये खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करने का राजा साहब के लिये यह अच्छा अवसर था। दोपहर की दावत के बाद तीन बजे नीचे जाने वाली मोटर से उन्हें विदा करने के लिये सेक्रेटरी साहब रिक्शा में 'सनीव्यू' तक आये। पहले से फोन कर उनके लिये टैक्सी में सीट रिजर्व की जा चुकी थी।

एक रुपया देकर मोटर लारी में चुपचाप नीचे चले जाने के बजाय कार की आराम-देह पिछली गद्दी पर बैठ कर जाना इर्शाद को सूलों की सेज जान पड़ रहा था। जेब में शेष रह गये केवल चार रुपये इसके लिये पर्याप्त भी होंगे या नहीं ? यदि सेक्रेटरी साहब 'सनीव्यू' तक साथ न आते तो गले पर यह आखिरी छुरी क्यों फिरती परन्तु उनके साथ न आने का अर्थ होता, इर्शाद के सम्पूर्ण सत्कार का विद्रूप में परिणत हो जाना। राजा साहब की कोठी , चलते समय नौकरों ने एक पंक्ति में खड़े होकर प्रणाम किया। इस सलाम का अर्थ वह समझा न हो, सो बात नहीं परन्तु हृदय पर पड़ती भाले की इस चोट को वह अपने असामर्थ्य में आँखें फिरा होंठ काट कर रह गया।

इतनी बड़ी हैसियत के मुसाफिर से किराये का तकाजा करना मोटर कम्पनी के एजेण्ट के लिये उचित न था। उसने विनय से रसीद सेक्रेटरी साहब के मार्फत 'नव्वाव' साहब के हाथ में पहुँचा दी। रसीद की ओर नजर डाले बिना सेक्रेटरी ने उसे नब्वाब साहब के हाथ में दे दिया। नव्वाब साहब ने भी प्रकट उपेक्षा से उसे पतलून की जेब में खोस लिया।

कार के चल पड़ने पर उस रसीद की उपेक्षा सम्भव न थी। इर्शाद ने रसीद निकाली और देखा-तीन रुपये आठ आने। फिर ध्यान से देखा और भाग्य के सम्मुख सिर झुका, एक दीर्घ निश्वास ले वह सीने पर बाँहें बाँध, सीट से पीठ टिका बैठ गया। तेज चाल से फिसलती जाती कार की आरामदेह गद्दी पर बैठ उसकी कल्पना अनुभव कर रही थी-एक कठोर अग्नि-परीक्षा में पूरा उतर कर वह सुरक्षित चला आ रहा है। राजा साहब की कोठी में बिताये दस दिन का उसके जीवन से भिन्न एक अस्तित्व था। दस दिन के इस जीवन का कोई आगा-पीछा न होने पर भी उसमें संतोष था। जैसे-तैसे उसने उसे निबाह दिया।

और जब देहरादून स्टेशन पर पहुँच ड्राइवर ने गाड़ी का पिछला दरवाजा खोल सलाम किया, इर्शाद सम्भ्रम-सहित उठ गाड़ी के बाहर आया। जेब में शेष रुपये-रुपये के चार नोट उसने ड्राइवर की ओर बढ़ा दिये। इर्शाद से पहले उतरने वाले अँग्रेज साहब पाँच रुपये का नोट ड्राइवर को दे, धन्यवाद के सलाम की प्रतीक्षा न कर सीधे स्टेशन की ड्योढ़ी में चले गये थे।ड्राइवर ने झुककर जो सलाम नवाब साहब को किया वह निश्चय ही आठ आने से अधिक मूल्य का था और जब ड्राइवर ने चारों नोट जेब में रख लिये तब उपाय ही क्या था।

कार में सफर करने वाले मुसाफिर से आदेश की प्रतीक्षा किये बिना कुली इर्शाद का हल्का असबाब उठा स्टेशन के भीतर चल दिया। गाड़ी अभी प्लेट-फार्म पर लगी न थी। सामान पहले दर्जे के मुसाफिरों के लिये

विश्राम करने के कमरे में रख दिया गया।

अँग्रेज मुसाफिर गुसलखाने में चला गया था। इर्शाद पंखे के नीचे आराम कुर्सी पर सिर को दोनों हाथों से थाम बैठ गया। वह परेशान था, गाड़ी में असबाब रखने के बाद कुली को कम से कम चार आने पैसे देने ही होंगे और इर्शाद की जेब में भाग्य से एक भी पैसा शेष न था। इन चार आने पैसों के अभाव में नव्वाबी के सम्पूर्ण अभिनय की इमारत ढह कर गिर जाना चाहती थी। इर्शाद ने किसी चमत्कार की आशा में सभी जेबों में हाथ डाले परन्तु जो था नहीं वह कहाँ से निकल आता ?

सहसा मस्तिष्क में एक विचार सूझा। अधमुँदी आँखों से अपने विचार उधेड़बुन में वह कितनी ही देर बैठ रहा। रिफ्रेशमेंटरूम का बैरा चाय के लिये पूछने आया। उसे इर्शाद ने सिर हिला कर दिया। गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही वह गुसलखाने में चला गया।

आधा घण्टा.....पैंतालिस-पचास मिनट....पूरा एक घण्टा गुजर गया। कुली बार-बार झाँक कर देख रहा था। गाड़ी ने सीटी दे दी, गार्ड साहब ने सीटी बजाई, हरी झंडी दिखाई, गाड़ी चल दी लेकिन साहब गुसलखाने से निकले नहीं। जब साहब गुसलखाने से निकले, गाड़ी छूट चुकी थी।

इर्शाद ने परेशानी के भाव से पूछा-क्या गाड़ी छूट गई ? कुली और वेटिंगरूम के बैरे ने सिर झुका कर उत्तर दिया-'हुजूर !'

इर्शाद ने टिकट चेकर बाबू के समीप जाकर शिकायत की-उसके गुसल करते समय ही गाड़ी छूट गई।

उत्तर मिला - 'अब आप देहली एक्सप्रेस से मुरादाबाद जाकर लाहौर-हावड़ा मेल पकड़ सकते हैं लेकिन सीट उसमें रिजर्व होना मुश्किल है।' मुरादाबाद में गाड़ी की प्रतीक्षा की असुविधा को असह्य बता इर्शाद ने कहा, 'अब आज नहीं, वह कल सीधा लखनऊ की गाड़ी से ही जायगा

और उसका फर्स्टक्लास का टिकट वापिस कर दिया जाय।

इर्शाद के उसी टिकट से आज के बजाय कल सफर करने में टिकट बाबू को कोई एतराज न था। टिकट वापिस भी हो सकता था परन्तु वह मसूरी में खरीदा जाने के कारण देहरादून में नहीं, उसके लिये लखनऊ में ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट के दफ्तर में टिकट भेज कर पत्र लिखा जाना जरूरी था।

इतने गहरे विचार से चली गई चाल उल्टी पड़ गयी। इर्शाद के पाँव तले से धरती खिसक गई। वह फिर आरामकुर्सी पर जा पड़ा। वेटिंगरूम के बाहर खड़ा कुली प्रतीक्षा कर रहा था और इर्शाद....वह कुली के चार आने माँग सकने के अधिकार के सम्मुख असमर्थ था। सब कुछ सहकर भी नव्वाबी की प्रतिष्ठा की मेहराब से इंट खिसकी जा रही थी- 'केवल चार आने के रूप में !'

आचार्य चतुरसेन

कथाकार आचार्य चतुरसेन ने मुख्यतया ऐतिहासिक घटनाओं को ही कथा का आधार बनाया है। उनके उपन्यास और कहानियों में ऐतिहासिक घटनाओं की भरमार है। तत्कालीन राजे-महराजाओं के यथार्थ चित्र को व्यक्त करना ही लेखक का धर्म रहा है। 'राजा साहब की कुतिया' भी ऐसी ही कहानी हे जिसमें राजा-रईसों की सनक, भड़क और हिमाकत का दिग्दर्शन कराया गया है। लेखक वकालत करना छोड़ कर राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी बन जाता है। राजा साहब मंसूरी ने जुबेदा (कतिया) की नौकरी पर लेखक को बहाल किया था। राजा साहब मंसूरी उसे बेहद प्यार करते थे। जब जुबेदा माधोगंज के राजा साहब रामधारीसिंह के कुत्ते जिम के साथ भाग जाती है, जो राजा साहब मंसूरी को गवारा नहीं है। परिणाम स्वरूप जुबेदा के चले जाने पर केवल सात महीने सात दिन की ही नौकरी लेखक को करनी पड़ी। अंत में लेखक का कहना है कि 'अंग्रेज बहादुर हिन्दुस्तान से क्या गए, शौकीन राजाओं और शानदार रईसों की नस्ल ही खत्मकर गए। भारत के भाग्य तो जरूर जागे पर विलायती कुत्तों की और हम जैसे विलायती पढ़े-पिट्ठुओं की तकदीर तो फूटी और फिर फूटी ?''

राजा साहब की कुतिया

आचार्य चतुरसेन

यह भी ऐसी ही कहानी है। राजा-रईसों की सनक, भड़क और हिमाकत का अच्छा दिग्दर्शन इस कहानी में है।

जी हां, हिन्दुस्तान की आजादी और मेरी बर्बादी एक ही साथ हुई। संयोग की बात है-बस, एक ज़रा-सी चूक ने तकदीर का बेड़ा गर्क कर दिया। अब आप जब सुनने पर आमादा है तो पूरा किस्सा ही सुन लीजिए।

आप तो जानते ही हैं कि एल-एल० बी० पास करके पूरे तीन साल अदालत की धूल फांकी। किसी भी बात को कोर-कसर नहीं रक्खी। चालाक से चालाक मुन्शी रक्खे, बीबी के सारे जेवर बेच-बेचकर मोटी-मोटी कानून की किताबें खरीदीं। बढ़िया से बढ़िया सूट सिलवाए। हमेशा बड़े वकीलों का ठाठ रक्खा, पर कम्बत वकालत को न चलना था-नचली। जी हां, कमाल ही हो गया। ठीक वक्त पर कचहरी जाता। हर अदालत में चक्कर काटता। एक-एक मुवकिकल को ताकता, भांपता। एक-एक कानूनी पाइष्ट पर दस-दस नज़ीरें पेश करता, मगर बेकार। मुवक्किल थे कि दूर ही से कतरा जाते। एक से बढ़कर एक नामाकूल-घनचक्कर धिसे-घिसाए वकील तो मज़े-मज़े जेब गर्म करके मूंछों पर ताव देते घर लोटते ; और बन्दा छूछे हाथ आता। ये सब तकदीर के खेल हैं, साहब दुनिया में लियाकत की कद्र ही नहीं है। अन्धी दुनिया है, भेड़ियाधसान है। दस तकदीर जिसकी सीधी उसीके पौबारह है। अन्त के तन्त मैं वकालत को धता बता राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी हो गया।

जी हां, कह तो रहा हूं-प्राइवेट सेकेटरी। यकीन कीजिए मैं आपको

एम्प्लायमेंट-लेटर भी दिखा सकता हूं। अर्ज करता हूं कि पूरे सात महीने और सत्ताईस दिन वह चैन की वंसी बजाई कि जिसका नाम ! यानी महीने में पूरी तनख्वाह, बढ़िया खाना, कोठी बंगला। पान, सिग्रेट-सिनेमा और दोस्त-मेहमानों का खर्चा फोकट में। बस ज़रा-सी चूक ने सब चौपट कर दिया।

मिस जुबेदा ? जी हां, यही नाम था उसका। राजा साहब ने मुझे जुबेदा ही की नौकरी पर बहाल किया था। बस समझ लीजिए-जुबेदा का ट्यूटर, गार्जियन, प्राइवेट सेक्रेटरी सब कुछ मैं ही था। राजा साहब उसे बेहद प्यार करते थे। जब मुझे नौकरी पर बहाल किया तो उन्होंने कहा था-बरखुरदार, जुबेदा को तुम्हारी निगरानी में सौंपकर मैं बेफिक्र हुआ। लेकिन खबरदार, तुम एक लमहे के लिए भी बेफ़िक्र न होना। नज़र कड़ी रखना और दिल नर्म। जुबेदा कमसिन है, बेसमझ है-मिज़ाज उसका नाजुक है। वह बहुत ऊंचे खानदान की औलाद है ; ऐसा न हो आवारा हो जाए, या उसकी आदतें बिगड़ जाएं। जुबेदा मुझसे जल्द हिलमिल गई। और मैं भी उसे प्यार करने लगा। बस, मैं अपनी नौकरी पर खुश था। और नौकरी मेरी रास पर चढ़ गई थी। राजा साहब जिद्दी और झक्की परले सिरे के थे। पुराने ज़माने के खानदानी रईस थे। हमेशा कर्ज़े से लदे रहते, फिर भी सभी तरह की लन्तरानियां लगी ही रहती थीं। कर्ज़ा और लन्तरानियां साथ-साथ न चलें तो रईस ही क्या ? उम्र साठ को पार कर गई थी। भारी-भरकम तीन मन का शरीर, बड़ा रुआबदार चेहरा, शेर की दहाड़ जैसी आवाज़, लाल-लाल आखें ! किसकी मज़ाल थी कि उनकी आंखों से आंखें मिलाए। बात-बात में शान। पीते भी खूब थे, मगर अकेले। किसी को साथ बैठाना शान के खिलाफ समझते थे। चीन-चार पैग चढ़ाने के बाद जब सवारी गठ जाती तब उनकी दहाड़ से कोठी दहलने लगती थी। उस समय जुबेदा को छोड़कर और किसी की मजाल न थी जो उनके पास

फटके।

गर्मी की मुसीबत से बचने के लिए राजा साहब मसूरी की अपनी कोठी में मुकीब थे। बहुत भारी कोठी थी। सुबह का वक्त था। रात बूंदाबांदी हुई थी। ठण्डी हवा चल रही थी। मौसम सुहावना था। और राजा साहब खुश थे। वे हाथ में एक पतली छड़ी लिए कमरे में टहल रहे थे। एक खिदमतगार पानदान और दूसरा उगालदान लिए अलग-बगल चल रहा था। दो लठेत पीछे। क्षण-क्षण पान खाना और उगालदान में पीक डालना उनकी आदत थी। जुबेदा उनके साथ थी और उसकी अर्दली में अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद मैं भी हाज़िर था। जुबेदा चुहल करती, कभी आगे कभी पीछे चक्कर खाती चली जा रही थी। राजा साहब देखकर खुश हो रहे थे। सच पूछिए तो जुबेदा को वे जान से बढ़कर चाहते थे।

असल में जुबेदा एक बहुत ही उम्दा नस्ल की नाजुक विलायती कुतिया थी और राजा साहब ने गत वर्ष उसे मसूरी ही में पन्द्रह सो रुपयों में खरीदा था।

अभी फाटक मुश्किल से कोई चालीस-पचास कदम था कि एक बुल-डाग फाटक में धुस आया। उसे देखते ही जुबेदा बेतहाशा उसकी ओर भाग चली। राजा साहब एकदम बौखला उठे। वे पागल की तरह, 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते उसके पीछे भागे। उनके पीछे जुबेदा का प्राइवेट सेक्रेटरी मैं, और मेरे साथ लठैत, खिदमतगार अगल-बगल। जिनकी राजा साहब पर नज़र पड़ी ओर जिसने उसकी ललकार सुनी, भाग चला। कोठी में हड़बोंग मच गवा।

फाटक पर जाकर राजा साहब हांफते-हांफते बदहवास होकर गिर गए। और हम लोगों को मीलों का चक्कर लगाना पड़ा। खुदा की मार इस जुबेदा की बच्ची पर! भागते-भागते कलेजा मुंह को आने लगा। पतलून चौपट हो गई। नया जूता बर्बाद हो गया। आखिर जुबेदा और जिम दोनों

पकड़े गए। और उन्हें खूब मुस्तैदी से बांध दिया गया।

खुशखबरी सुनाने जब मैं राजा साहब के कमरे में पहुंचा तो वे बफरे हुए शेर की तरह दहाड़ रहे थे-सब खिदमतगार, लठैत, नौकर हाथ बांधे चुप खड़े थे। राजा साहब कह रहे थे - सबको गोली से उड़ा दूंगा। नामाकूल ! मर्दूद ! मेरे पहुंचने पर वे लाल-लाल आंखों से मुझे घूरने लगे। मैने डरते-डरते हाथ जोड़कर कहा-सरकार, दोनों को पकड़ लिया है।

"बांधा उनको ?"

"जी हुजूर !"

"अलग-अलग ?"

"जी सरकार !"

"यही मुनासिब सजा है, लेकिन उस आवारा कुत्ते जुर्रत तो देखो। मुझे हैरत है। क्या तुम जुबेदा की खानदानी इज्जत जानते हो ?"

मैने कहा-जी हां, हजूर ने उसे पन्द्रह सौ रुपये मे खरीद लिया था।

"बेहूदा बकते हो, खरीद किया क्या माने ? पन्द्रह सौ रुपया क्या जुबेदा की कीमत हो सकती है ?"

"जी नहीं सरकार !"

"तो फिर ?" राजा साहब ने आंखें तरेरकर मेरी ओर देखा।

इस 'तो फिर' का क्या जवाब दूं, यह समझ ही न सका। हाथ बाँधे खड़ा रहा। इसी समय एक खिदमतगार धबराया हुआ दौड़ता आया। आकर उसने राजा साहब से कहा-सरकार, माधोगंज की कोठी का प्यादा हाथ में लट्ठ लिए फाटक पर खड़ा है। वह कहता है-खेरियत इसी में है कि 'जिम' को खोल दीजिए, वरना हगामा मच जाएगा।

राजा साहब ने तैश में आकर कहा-ऐसा नहीं हो सकता। माधोगं वालों से जो करते बने करें।

लेकिन माधोगंज की कोठी का प्यादा खुद ही भीतर घुस आया उसने खूब झुककर राजा साहब को सलाम किया और हाथ बांधकर अ की-हुज़ूर ! खुद बड़े सरकार ने मुझे भेजा है, उन्हें बहुत रंज है। लेकि सरकार अब हुक्म हो जाए कि कुत्ता खोलकर मेरे हवाले कर दिया जाए बड़े सरकार बड़े गुस्सैल हैं, धुन पर चढ़ गए तो नाहक कोई खून हो जाएगा।

राजा साहब गरज पड़े-क्या कहा, खून हो जाएगा ? बढ़कर बोलत है। नामाकूल, मर्दूद ! अच्छा ले। यह कहकर उन्होंने खूब चिल्लाकर अप लठैतों को पुकारा - माधो, दीपा, रामू, गुल्लू, किसना !

परन्तु लठैतों के स्थान पर आ खड़े हुए माधोगंज के राजा साह रामधारीसिंह। साठ साल की उम्र, लम्बा कद, हाथ में बढ़िया छड़ी, बद पर पूरी रियासती पोशाक। उन्होंने एकदम राजा साहब के सामने पहुंचक कहा-यह आपकी सरासर ज़्यादती है राजा साहब, कि आप अपने नौक की बेजा हरकत पर उन्हें शह देते हैं। आपका लिहाज़ करता हूं-बरना एक एक की खाल खिंचया लूं। बहुत हुआ, अब जिम को मेरे हवा कीजिए।

राजा साहब ने बुलडाग की भांति गुर्राकर कहा-क्या खूब ! य दम-खम और शान ? आप मेरे आदमियों की खाल खींच लेंगे ! गो आप ही उनके मालिक हैं। चोरी और सीना-ज़ोरी !

"लेकिन चोरी की किसने ?"

"जिम ने। ट्रेसपास, एकदम किमिनम ट्रेसपास !"

"आप ज़्यादती कर रहे हैं राजा साहब ! इसका नतीजा अच्छा

होगा। याद रखिए, खूनखराबी की नौबत आई तो इसके ज़िम्मेदार आप ही होंगे।''

''तो आप हमें धमकी दे रहे हैं ? सरीहन वह आवारा कुत्ता कोठी में घुस आया और मेरी जुबेदा को भगा ले गया। इस जुल्म को तो देखिए।''

''कमाल करते हैं आप राजा साहब ! जिसको आप आवारा कहते हैं, क्या आप नहीं जानते कि बहुत मुद्दत की खोज के बाद जिम को मैंने जनाब गवर्नर साहब बहादुर से सौगात में पाया था ?''

''क्यों नहीं, जनाब गवर्नर साहब से तो आपकी पुस्तैनी रसाई है। जाइए, कुत्ता नहीं खोला जाएगा।''

''अच्छी नादिरशाही है। यह आप हमारी खानदानी तौहीन कर रहे हैं।''

''खूब-खूब, गोया आप भी खानदानी रईस हैं। दो दिन की जमींदारी को चोरी-चकारी से बढ़ाकर और बनियागिरी से चार पैसे जोड़ लिए सो आप हो गए खानदानी रईस ! कमाल हो गया। और हम जो बहादुरशाह के ज़माने से रईस न चले आ रहे हैं, सो ? आपका कुत्ता हमारी खानदानी कुतिया से आशनाई करेगा। ऐं यह हिमाकत !''

''रस्सी जल गई ऐंठन बाकी है। बाल-बाल तो कर्ज में बिधे पड़े हैं, आप खानदानी रईस बनते हैं। राजा साहब, होश की लीजिए, चोरी और डाकेबाज़ी के जुर्म में सारे खानदान को न बंधवा लूं तो रामधारी नाम नहीं। आप हैं किस फेर में ?

''अच्छा, तो यह भी देख लिया जाएगा। कर देखिए आप। नया रुपया है, उछलेगा तो ज़रूर ही। लेकिन मैं कहे देता हूं, लन्दन से बैरिस्टर बुलाऊगा लन्दन से। भोपाल गंज रियासत की भले ही एक-एक इंट

बिकजाए। परवाह नहीं।"

"तो यहां भी कौन परवाह करता है। मैं खड़े-खड़े माधोगंज की ज़मींदारी को बेच दूंगा और वाशिंगटन से कौसिल बुलाऊंगा।"

"देखा जाएगा, गर्वनंर साहब बहादुर की दोस्ती पर न फूलिएगा। शहादतें दूंगा। पता चल जाएगा कोर्ट में।"

"देख लूंगा, किसके धड़ पर दो सिर हैं! कौन शहादत देने आता है।"

"तो तुम पर तीन हरफ हैं, जो करनी में कसर रक्खो।"

"राजा साहब, लोथे बिछ जाएंगी, खोथें।"

"खून की नहरें बहा दूंगा, नहरें ; समझ क्या रखा है आपने ?"

दोनों पुराने रईस अपने-अपने दिल के फफोले फोड़ रहे थे। और हम लोग सिर नीचा किए खानदानी रईसों की खानदानी लड़ाई देख रहे थे। जी हां, रईसों की बात ही निराली है। इसी समय कुंवर साहब लपकते हुए चले आए।

हल्के नीले रग का बुश कोट, आंखों पर गहरा काला चश्मा, हाथ में टेनिस का रैकट, गोरा रंग, घूंघर बाले बाल, होंठों पर मुस्कान, इसी साल एम० ए० फाइनल किया था। कुंबर साहब ने राजा माधोगंज को देखा तो उन्होने हंमकर उन्हें प्रणाम किया, और कहा-कमाल किया आपने चाचाजी, धूप में तकलीफ की, चलिए मैं 'जिम' को आपके यहां पहुंचाए आता हूं।

राजा साहब ने एकदम गुस्सा करके कहा-"अयं, यह कैसी हिमाकत ? अपने खानदान को नहीं देखते, कुत्ता उनके घर पहुंचाने आओगे ?"

011882 VIJAYA EVENING COLLEGE
BASAVANAGUDI. BANGALORE-4

माधोगंज के राजा साहब ने जाते-जाते कहा-

"होसला हो तो आ जाना अदालत में।"

"लन्दन से बैरिस्टर बुलाऊंगा - आपने समझ क्या रखा है ?"

"तो मुकाबले के लिए वार्शिगटन के वकील तैयार रहेंगे।"

इसी समय एक खिदमतगार रोता-हांपता सिर के वाल नोचता आ खड़ा हुआ। उसने कहा-गज़ब हो गया सरकार, जुबेदा, उस जंगली जिम के साथ भाग गई।

"अयं, भाग गई ?"

राजा साहब दौखलाकर अपनी तोंद पीटने और हाय-हाय करने लगे। लम्बी-लम्बी सांसें खींचते हुए उन्होने कहा-

"मेरी खानदानी इज्जत लुट गई। कम्बख्त जुबेदा की बच्ची ने न अपने खानदान का ख्याल किया न मेरे आली खानदान का। दोनों की लुटिया डुबोई।"

बहुत देर तक राजा साहब कलपते रहे। इसके बाद मेरी ओर देखकर कहा-

"निकल जाओ ! अभी चले जाओ - नामाकूल, मर्दूद !'

और इस तरह खट से मेरा पतंग कट गया। इज़्जत और आराम की नौकरी छूट गई। अब सिर्फ याद रह गएवे सात महीने और सत्तईस दिन।

अब कहां रहे वे खानदानी रईस। अंग्रेज़ बहादुर हिन्दुस्तान से क्या गए, शौकीन राजाओं और शानदार रईसों की नस्ल ही खत्म कर गए। भारत के भाग्य तो ज़रूर जागे-पर विलायती कुत्तों की और हम जैसे विलायती पढ़े-पिट्ठुओं की तकदीर तो फूटी और फिर फूटी

विष्णुप्रभाकर

आधुनिक कथाकारों में विष्णुप्रभाकर का अपना विशेष स्थान रहा है। समाज के हर रूप का वर्णन उनके उपन्यास और कहानियों में पढ़ने को मिलता है। इस कहानी में देश विभाजन की घटना को प्रकट किया गया है। उनमें मिस्टर पुरी भी एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होने अपनी आँखों के सामने हत्याएँ होती देखी है। विक्षिप्त मन न जाने अतीत में खो जाता है, अतीत को पाने के लिए। जिस वतन की मिट्टी और धरती से जन्म से लगाव हो, भला उसे कैसे त्याग जा सकता है ? इसी भावना के कारण मि.पुरी बार-बार उस धरती को पाने के लिए पहुँच जाते हैं। गोली लगती है और उनकी भावना का अन्त हो जाता है। कहानी में वातावरण और तत्कालीन परिवेश का बड़ा ही सुन्दर और मार्मिक वर्णन हुआ है।

मेरा वतन

विष्णु प्रभाकर

उसने सदा की भाँति तहमद लगा लिया था और फैज ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तेजी से झटका देता, परन्तु पैर यन्दवत् आगे बढ़ते चले जाते। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बे-तरह काँप-काँप जाता, पर उसकी गति में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ता। देखने वालों के लिए वह एक अर्धविक्षिप्त से अधिक कुछ नहीं था। वे अकसर उसका मजाक उड़ाया करते। वे कहकहे लगाते और ऊँचे स्वर में गालियाँ देते, पर जैसे ही उनकी दृष्टि उठती न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आँखों में क्या होता कि वे सहम-सहम जाते, सोडावाटर के उफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अन्दरूनी बस्ती को शोले की तरह सुलगाती हुई फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, 'जरूर इसका सब कुछ लुट गया है'..... 'इसके रिश्तेदार मारे गए है'..... 'नहीं, नहीं ऐसा लगता है कि काफिरो ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोंक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख पुकार बिल्ली को मिमियाहट से चिड़िया के बच्चे की ची-चीं मे पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है।'

"और यह सब देखता रहा है।"

"हाँ। यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आँखों में उतर आया है। उसी ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है। वह इसके लहू में इस तरह घुल-मिल गया है कि हमे देखकर डर लगता है।"

"डर", किसी ने कहा, "इसकी आँखों मे मौत की तस्वीर है, वह

मौत जो कल्ल, खूँरेजी और फाँसी का निजाम सँभालती है।"

एक बार राह चलते दर्दमन्द ने दुकानदार से पूछा, "यह कौन है ?"

दुकानदार ने जबाब दिया, "मुसीबतजदा है, जनाब। अमृतसर में रहता था। काफिरों ने सब कुछ लूटकर बीबी-बच्चों को जिन्दा जला दिया।"

"जिन्दा।" राहगीर के मुँह से अचानक निकल गया। दुकानदार हँसा, "जनाब किस दुनिया में रहते है। वे दिन बीत गए जब आग काफिरों के मुर्दो को जलाती थी। अब तो वह जिन्दों को जलाती है।"

राहगीर ने तब अपनी कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी। फिर भी जरा-सा बैठ कर उसने का, "कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है।"

"जी हाँ। वकील था, हाइकोर्ट का बड़ा वकील। लाखों रुपयों की जायदाद छोड़ आया है।"

"अच्छा..... ।"

"जनाब ! आदमी आसानी से पागल नहीं होता। चोट लगाती है तभी दिल टूटता है। और जब एक बार टूट जाता है तो फिर नहीं जुड़ता। आजकल चारों तरफ यही कहानी है। मेरा घर का मकान नहीं था, लेकिन में सामान इतना था कि तीन मकान खरीदे जा सकते थे।"

"जी हाँ" राहगीर ने सहानुभूति से भरकर कहा, 'आप ठीक कहते हैं पर आपके बाल-बच्चे तो सही सलामत आ गए है।'

'जी हाँ। खुदा का फजल है। मैने उन्हें पहले ही भेज दिया था। जो पीछे रह गएं थे उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करदे हिन्दुस्तान को.....'

राहगीर उठा। उसने बात काटकर इतना ही कहा, "देख लेना एक दिन वह गारत होकर रहेगा। खुदा के घर में देर है अन्धेर नहीं।'

और वह चला गया, परन्तु उस अर्ध-विक्षिप्त के कार्यक्रम में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह उसी तरह धीरे-धीरे बाजारों मे से गुजरता, शरणार्थियों की भीड़ में धक्के खाता, परन्तु उस ओर देखता नहीं, उसकी दृष्टि तो आसपास की दुकानों पर जा अटकती थी। जैसे मिकनातीस लोहे को खींच लेता है वैसे ही वे बेजबा इमारतें जो जगह-जगह पर खण्डहर की शक्ल में पलट चुकी थी, उसकी नजर को और उसके साथ-साथ उसके मन् बुद्धि, चित और अहंकार सभी को अपनी ओर खींच लेती थीं और फिर उसे जो कुछ याद आता वह उसे पैरके तलुए से होकर सिर में निकल जाने वाली सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल मे घुमड़-घुमड़ उठता। इसी कारण वह मर नहीं सका। केवल सिसकियाँ भरता रहा। उन सिसकियो में न शब्द थे, न आँसू। वे सब सूखी हिचकियों की तरह उसे बेजान किए रहती थी।

सहसा उसने देखा-सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनवाया था। उसके ऊपर के कमरे में उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे में उसने आँखे खोली थीं और उसी कमरें में उसके बच्चों ने पहली बार प्रकाश-किरण का स्पर्श पाया था।

उस मकान के कण-कण में उसके जीवन का इतिहास अंकित था। उसे फिर बहुत-सी कहानियाँ याद आने लगीं, बह उन कहानियों में इतना डूब गया कि उसे परिस्थिति का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह यन्त्रवत् जीने पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ा और जैसा कि वह सदा करता था उसने घंटी पर हाथ रखा। बे-जान घंटी शोर मचाने लगी और तभी उसकी नींद टूट गई। उसने घषड़ाकर अपने चारों ओर देखा। वहाँ सब एक ही जैसे आदमी नहीं थे। वे एक जैसी जुबान भी नहीं बोलते थे। फिर भी

उनमें कुछ ऐसा था जो उन्हे 'एक' बना रहा था और वह इस 'एक' में अपने लिए कोई जगह नहीं पाता था। उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा, पर तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतरकर आया। उसने ढीला-ढीला पाजामा और कुरता पहना था, पूछा, "कहिए जनाब ?"

वह अचकचाया, "जी।"

"जनाब किसे पूछते है ?"

"जी" मैं पूछता था "कि मकान खाली है।"

ढीले पाजामे वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाईगीरा हो। फिरमुँह बनाकर तलखी से जबाब दिया, "जनाब तशरीफ ले जाइए वरना....."

आगे उसने क्या कहा वह यह सुनने के लिए नहीं रुका। उसकी गति में तूफान भर उठा। उसके मस्तिष्क में बवंडर उठ खड़ा हुआ और उसका चिंतन गति की चट्टान पर टकराकर पाश-पाश हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनारकली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लाँघ चुका था। वह बहुत दूर निकल आया था।

वहाँ आकर वह तेजी से काँपा। एक टीस ने उसे कुरेद डाला। जैसे बढ़ई ने पेच में पेचकश डालकर पूरी शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरु कर दिया हो। हाइकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दृष्टि उठाकर उसके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया-वह कहाँ बैठता था, वह कौन से कपड़े पहनता था कि सहसा उसका हाथ अपने सिर पर गया जैसे उसने साँप को छुआ हो। उसने उसी क्षण हाथ को खींच लिया पर मोहक स्वप्नों ने उस रंगीन दुनिया की रंगीनी को उसी तरह बनाए रखा। वह तब इस दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर को जो वास्तविक दुनिया है वह उसके लिए मृगतृष्णा बन गई थी। उसने

अपने पैरों के नीचे को धरती की प्यार से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तस्वीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अन्तस्तल पर उतर आई। वह इसी घरती पर चला करता था। उसके आगे-पीछे उसे नमस्कार करते, सलाम झुकाते, बहुत-से आदमी आते और जाते थे। दूसरे वकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और.....

विचारों के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलाँग लगाई। उसका ध्यान जज के कमरे पर आकर केन्द्रित हो गया। जब वह अपने केस में शुरु करता तो कमरे में सन्नाटा छा जाता। केवल उसकी वाणी की प्रतिध्वनि ही वहाँ गूँजा करती, केवल 'मी लार्ड' शब्द बार-बार उठता और 'मी लार्ड' कलम रखकर उसकी बात सुनते.....

हनुमान फिर कूदे। अब वह बार एसोसिएशन के कमरे में आ गया था। इस कमरे में न जाने कितने बेवाक कहकहे उसने लगाए। कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की, महापुरुषों को श्रद्धाअर्पित कीं, विदा और स्वागत के खेल खेले.....

वह अब उस कुर्सी के बारे में सोचने लगा जिस पर वह बैठा करता था। उसे कमरे की दीवारों के साथ-साथ दरवाजे के पायदान की याद भी आ गई, कभी-कभी ये छोटी-छीटी तफसीलें आदमी को कितना सकून पहुँचाती है। इसलिए वह सब कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ा, पर तभी जैसे किसी ने कचोट लिया। उसने देखा कि लॉन की हरी घास मिट्टी मे समा गई है। रास्ते बन्द है। केवल डरावनी आँखों वाले सैनिक मशीनगन सैभाले और हैलमेट पहने तैयार खड़े है कि कोई आगे बढ़े और वे शूट कर दें, उसने हरी वर्दी वाले होमगाडों को भी देखा कि रायफल थामे पठान लोग जब मन में उठता, फायर कर देते हैं। वे मानो छड़ी के स्थान पर रायफल का प्रयोग करते है और उनके लिए जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नहीं था। वह खंडहरों के लिए आँसू भी नहीं बहाता था

उसने अग्नि की प्रज्वलित लपटों को अपनी आँखों से उठते देखा था। उसे तब खाण्डव-वन की याद आ गई थी जिसकी नींव पर इन्द्रप्रस्थ-सरीखे वैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था तो क्या इस महानाश की नींव पर भी किसी गरिमामय कलाकृति का निर्माण होगा। इन्द्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत संभव, हुआ, जिसने इस अभागे देश के मदोन्मत, किन्तु जर्जरित शौर्य को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है।

एक दिन उसने अपने बेटे से कहा, "जिन्दगी न जाने क्या-क्या खेल खेलती है। वह तो बहुरूपिया है। दूसरी दुनिया बनाने में देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।"

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। उसने परिवार को एक छोटे-से कस्बे में छोड़ा और आप आगे बढ़ गया। वह अपनी उजड़ी हुई दुनिया फिर से बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला, लिखा था, "पिताजी न जाने कहाँ चले गए।"

तार पढ़कर बड़ा भाई घबरा गया। वह तुरन्त घर लौटा और पिता को खोज करने लगा। उसने मित्रोंको लिखा, रेडियों पर समाचार भेजे, अखबारों में विज्ञापन निकलवाए। सब कुछ किया, पर वह नहीं समझ सका कि आखिर में वे कहाँ गए और क्यों गए। वह इसी उधेड़-बुन में था कि एक दिन सबेरे-सबेरे क्या देखता है कि उसके पिता चले आरहे है शान्त निर्द्वन्द्वऔर निर्लिप्त।

"आप कहाँ चले गए थे ?" प्रथम भावोद्रेक समाप्त होने पर उसने पूछा।

शान्त मन से पिता ने उत्तर दिया, "लाहौर।"

"लाहौर," पुत्र अविश्वास से काँप उठा, "आप लाहौर गए थे ?"

"हाँ ।"

"कैसे ?"

पिता बोले, "रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूँ ।"

"पर आप वहाँ क्यों गए थे ?"

"क्यों गया था" जैसे उनकी नींद टूटी । उन्होने अपने आपको संभालते हुए कहा, "वैसे ही देखने के लिए चला गया था ।"

और आगे की बहस से बचने के लिए वे उठकर चले गए । उसके बाद उन्होने इस बारे मे किसी प्रश्न का जवाब देने से इन्कार कर दिया । पुत्रो ने पिता में आने वाले परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझ सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे, क्योंकि वे दुनिया के सभी दूसरे काम सदा की शांति करते रहते थे । हाँ, पंजाब की बात चलती तो, आह भरकर कह देते थे, "गया पंजाब । पंजाब अब कहाँ है ?"

पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे इसी बीच में वे फिर एक दिन लाहौर चले गए परन्तु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सकें, वे लौट आए । पत्नी ने पूछा, "आखिर क्या बात है ?"

"कुछ नहीं ।"

"कुछ नहीं कैसे ? आप बार-बार वहाँ क्यों जाते है ?" तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होने धीरे से कहा "क्यों जाता हूँ क्योंकि वह मेरा वतन है । मैं वहीं पैदा हुआ हूँ । वहाँ की मिट्टी में मेरी जिन्दगी का राज छिपा है, वहाँ की हवा में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है ।"

पत्नी की आँखे भर आई, बोली, "पर अब क्या, अब तो सब कुछ गया ।"

"हाँ, सब कुछ गया।" उन्होने कहा, "मैं जानता हूँ अब कुछ नहीं हो सकता पर न जाने क्या होता है, उसकी याद आते ही मैं अपने आपको भूल जाता हूँ और मेरा वतन मिकनातीस की तरह मुझे अपनी ओर खींच लेता है।"

पत्नी ने जैसे पहली बार अपने पति को पहचाना हो। अवाक्-सी दो क्षण वैसे ही बैठी रही। फिर बोली, "आपक अपने मन को संभालना चाहिए जो कुछ चला गया उसका दुःख तो। जिन्दगी-भर सालता रहेगा। भाग्य में यही लिखा था, पर अब जान-बूझकर आग में कूदने से क्या लाभ ?"

"हाँ, अब तो जो कुछ बचा है उसी को सहेजकर गाड़ी खीचना ठीक है।" उसने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नए क्षेत्र में जुट गया। उसने फिर वकालत का चोगा पहन लिया। उसका नाम फिर बार एशोसिएशन मे गूँजने लगा। उसने अपनी जिन्दगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और शीघ्र ही वह अपने काम में डूब गया कि देखने वाले दाँतों तले उँगली दबाकर कहने लगे, "इन लोगों में कितना जीवट है। सैकड़ों वषों में अनेक पीढ़ियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था वह क्षण-भर में राख का ढेर हो गई और अब बिना आँसू बहाए, उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों में बना देना चाहते है।"

उनका अचरज ठीक था। तंबुओं और कैम्पों के आस-पास, सड़कों के किनारे राह से दूर भूत-प्रेतों के चिर-परिचित अड्डों में, उजड़े गाँवों में खोले और खादर में, जाहँ कहीं भी मनुष्य की शक्ति कुण्ठित हो चुकी थी, वहीं ये लोग पहुँच जाते थे और पादरी के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे। इन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती असीम है, शक्ति असीम है, फिर निराशा कहाँ रह सकती है ?"

ठीक इसी समय जब उसका बड़ा पुत्र अपनी नई दूकान का मुहूर्त रने वाला था, उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला, "पिताजी पाँच न से लापता है।"

पढ़कर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकड़े-टुकड़े करके उसने दूर ल दिए। चिनचिनाकर बोला" वे नहीं मानते तो उन्हे अपने किए का फल ोगना चाहिए। वे अवश्य लाहौर गए है।"

उसका अनुमान सच था। जिस समय वे वहाँ चिन्तित हो रहे थे उसी मय लाहौर के एक दुकानदार ने एक अर्धविक्षिप्त व्यक्ति को, जो तहमद गाए, फैज कैप ओढ़े, फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखता हुआ घूम ा था, पुकारा। सुनिए तो। बहुत दिन से दिखाई नहीं दिए, कहाँ चले ए थे ?"

उस अर्धविक्षित ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया, "मै अमृतसर ला गया था।"

"क्या" दुकानदार ने आँखें फाड़कर कहा, "अमृतसर ?"

"हाँ, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।"

दुकानदार की आँखे क्रोध से चमक उठीं, बोला, 'मै जानता हूँ। मृतसर में साड़े तीन लाख मुसलमान रहते थे, पर आज एक भी नहीं ।'

"काफिरों से सबको भगा दिया है, पर हमने भी कसर नहीं ोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिन्दू या सिक्ख नहीं है और कभी होगा ी नहीं।"

वह हँसा, उसकी आँखे चमकने लगीं। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा ी बेरंग था और वह हँसता चला गया, हँसता चला गया।.....वतन, रती, मौहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं .....सबसे बड़ा मजहब दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बन्दा रहता है, जिस रती पर खुदा का नाम लिया जाता है वह मेरा वतन है। वही मेरी धरती और वही मेरी मोहब्बत है।"

दुकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा, "आदमी जब हो खो बैठता है तो कितनी सच्ची बात कहता है।"

साथी ने जवाब दिया, 'जनाब। तब इसकी जबान से खुदा बोल है।'

"बेशक", उसने कहा और मुड़कर उस अर्धविक्षिप्त से बोल "शेख साहब। आपको घर मिला ?"

"सब मेरे ही घर है।"

दुकानदार मुस्कराया, "लेकिन शेख साहब। जरा बैठिए त अमृतसर में किसी ने आपको पहचाना नहीं।"

वह ठहाका मारकर हँसा, "तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूँ।

"सच।"

"हाँ" उसने आँखें मटकाकर कहा।

"तुम जीवट के आदमी हो।"

और तब दुकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मँगा दिए। लापरवाही से उन्हें पल्ले में बांधकर और एक टुकड़े को चबाता हु वह आगे बढ़ गया।

दुकानदार ने कहा, "अजीब आदमी है, किसी दिन लखपति थ आज फाकामस्त है।"

"खुदा अपने बन्दों का खूब इम्तहान लेता है।"

"जन्नत ऐसे ही मिलता है।"

"जी हाँ किस्मत भी खूब है। जान-बुझकर आग में जा कूदा।

"वतन की याद ऐसी हीहोती है" उसके साथी ने जो दिल्ली का र वाला था कहा,

"अब भी मुझे जब दिल्ली की याद आती है तो दिल भर आ है।"

उतने कष्ट की कल्पना करना जो दूसरे ने भोगा है असम्भव जै

है, फिर भी यातना की समानता के कारण दो भिन्न व्यक्तियों की सम्वेदना एक बिन्दु पर आकर एक हो जाती है।

वह आगे बढ़ रहा था। माल पर भीड़ बढ़ रही थी। कारें भी कम नहीं थीं। अंग्रेज, एंगलों-इण्डियन तथा ईसाई नारियाँ पहले की तरह ही बाजार में देखी जा सकती थीं फिर भी उसे लगा जो माल उसने देखी थी वह नहीं है। शरीर अवश्य कुछ वैसा ही है, पर आत्मा वह नहीं है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि को दोष था। कम-से-कम वे जो वहाँ घूम रहे थे उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूर नहीं थी। बैल अपनी डगर को पहचानते है। उसके पैर भी दृढ़ता से रास्ते पर बढ़ रहे थे और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमाथश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर वुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अन्दर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका। वह लाँ कालिज के सामने निकल आया। उसी क्षण उसका दिल एक गहरी हूक से टूटने लगा। कभी वह इस कालेज में पढ़ाकरता था....

वह काँपा, उसे याद आया, उसने इस कालेज मे पढ़ाया भी है....

वह फिर काँपा। फिर हूक उठी। उसकी आँखे भर आई मुँह फेर लिया। उसके सामने अब वह रास्ता था जो उसे दयानन्द कालेज ले जा सकता था। एक दिन पंजाब विश्वविद्यालय, दयानन्द विश्वविद्यालय कहलाता था।

तभी एक भीड़ उसके पास से निकल आई। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे। बेघर और बे-जर। लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कड़वा हो आया। उसने चीख-चीख कर उन्हें गालियाँ देनी चाहीं। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गए। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ गया। वह जल्दी-से-जल्दी कालेज कैम्प में पहुँच जाना चाहता था। उन दो व्यक्तियों में से एक ने, जिसने उसे

पहचाना था, दूसरे से कहा-"मैं इसको जानता हूँ।"

"कौन है ?"

"हिन्दू"

साथी अचकचाया, "हिन्दू।"

"हाँ, हिन्दू, लाहौर का एक मशूहर वकील....."

और कहते-कहते उसने ओसरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल लिया। वह आगे बढ़ा आगे बढ़ा। उसने कहा, "जरूर यह मुखबिरी करने आया है।"

उसके बाद गोली चली। एक हल्की-सी हलचल, एक साधारण-सी खटपट। एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परन्तु जो अनेक व्यक्ति कौतुहलवश उस पर आए थे, उनमें से एक ने उसे पहचान लिया। वह हतप्रभ रह गया और यंत्रवत पुकार उठा, "मिस्टर पुरी। तुम यहाँ कैसे....."

मिस्टर पुरी ने आँखे खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया मंडरा रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और पहचान लिया। धीरे से कहा, "हसन....."

आँखे फिर मिच गई। बदहवास हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा, 'जल्दी करों, टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी....."

भीड़ बढ़ती जा रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड सबने उसे घेर लिया। हसन, जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रति द्वन्द्वी बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उसे भीगी-भीगी आँखों से देख रहा था। एक बार सुनकर उसने फिर कहा, "तुम यहाँ इस तरह क्यों आए, मिस्टर पुरी।"

मिस्टर पुरी ने इस बार प्रयत्न करके आँखे खोली और वे फुसफुसाए, "मै यहाँ क्यों आया ? मैं यहाँ से जा ही कहाँ सकता हूँ। वह मेरा वतन है, हसन। मेरा वतन.....।"

फिर उसकी यातना का अन्त हो गया।

रागेंय राघव

लेखक रागेंय राघव ने अपने कथा-साहित्य में व्यक्ति और समाज के हर विषय को लिया है। मानव मन की मनोभावना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। 'नया समाज' कहानी के मुख्य पात्र मास्टर साहब है। वे बदलते युग की साक्षी हैं। उनका पुराना समाज नये समाज के सामने व्यर्थ-सा लगता है। वेद भी इस नये समाज को स्वीकार करते हैं। एक छोटे से बालक के मुँह से ऐसी बातें सुनते हैं, तो उन्हें लगा जैसे जमीन फट जाएगी। कहानी में बदलती परिस्थितियों को दर्शाने का यत्न किया है। पात्रों की अपेक्षा घटनाओं की अधिकता है। मास्टर साहब साक्षी बन कर चुपचाप हरेक का अन्दाज लेते है।

नया समाज

रांगेय राघव

शहर से चार मील दूर के उस छोटे-से गाँव की शांति, या नीरवता, अब टूट गई थी। पिछली लड़ाई के पहले केवल रेल की घड़घड़ाहट सुनाई देती थी या फिर बड़ी सड़क पर कभी-कभी साहब लोगों की शिकार पर जाती हुई रंगीन औरतों से लदी बड़ी-बड़ी मोटरे ; वरना उधर तालाब के किनारे के सेंठे के जंगल में हवा भरकर गूँजा करती थी, जिनमें कभी-कभी बनैले सूअर थुथने फुफकारते घुमा करते थे। पर अब वही कारखाना भन-भन करके शोर करता है। उसका धुआँ चिमनियों से उड़ता और फिर झुककर गाँव की ओर भागने लगता-जैसे वह इन्सान से दूर नही जाना चाहता है-और छप्परो पर लोटकर वह फिर ऊपर उठने लगता। पर किसी को भी यह देखने की फुर्सत नहीं थी। तिस पर अब मजदूर नौकरियों से निकाले जा रहे थे-छँटनी हो रही थी।

रेल डिब्बे उधर ही सरका दिए जाते थे। और बच्चे उन मालगाड़ियों के डिब्बों में खेला करते। उनके इर्द-गिर्द ही पहाड़ियों की गूँजती हुई आवाज उठती और फिर रेल की पटरियों के दोनों तरफ इकट्ठा किए गए जले कोयले के ढेरों के पीछे भागते हुए बच्चे अपनी-अपनी जगह से निकल भागने लगते। किनारे ही मजदूरों के लिए क्वार्टर बन गए थे। अक्सर तो मजदूर गाँव का था, पर इधर से जो शहर आ पहुँचा था, उसके लिए यह घर बनाना जरूरी हो गया था। वहाँ अक्सर पुलिस के सिपाही दिखाई देते। उनकी आँखों में एक खौफ की निशानी होती थी।

पर मास्टर साहब के लिए यह बातें दूर की थी। जिंदगी का पत्थर बड़ा मजबूत था। उस पर किसी तरह अब सतत रस्सी के घिसने से कुछ

ड्डा-सा पड़ना शुरु हुआ था। मास्टर साहब कुछ-कुछ खिचड़ी बालों से, जिनकी टोपी के अंदर न सिर्फ चुटिया, बल्कि एक अधकचरी बुजुर्गी भी छिपी रहती थी, अपनी उम्र से अधिक दिखाई देते। घुटनों तक ऊँची धोती पहनते। पाँव में बूट। और अक्सर टखनों तक धूल चढ़ी रहती। जब वे जूता उतारते, पाँव धूल से जूतों में अक्षत रहता हुआ भी पसीज उठता और पाँव पर जूते का नक्शा हू-ब-हू उतर आता। चेहरे पर ऊपर के दाँत जरा उठे हुए थे। वैसे उनकी मूँछे काफी हद तक इस बात को छिपा लेती थी।

कभी-कभी उन्हें अपने मिलते। मास्टर साहब उनमें से कुछ को पहचानते थे। कुछ उन्हें अपने निकट समझते थे। एक लड़का साइकिल पर आकर अखबार देता। जब मास्टर साहब उस अखबार को पढ़ते, तो उन्हें लगता कि दुनिया में, कही भी नही छपता था। एक ने तो गाँववाली की तरह सामने से बिल्कुल सीख रखवा ली थी। वह अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा लड़का था। मास्टर साहब ने उसे जब देखा, तो वे उसे आसानी से पहचान भी नहीं सके। उन्होने उससे परिचय के कारण बात भी नही की। तब पता चला कि वह आजकल किसानों में काम करता है। पुलिस उसके पीछे पड़ी हुई है।

मास्टर साहब को कुछ भीतरी भय-सा हुआ। उन्हें लगा, वे स्वयं क्रांतिकारी थे, क्योंकि ऐसे व्यक्ति के पास खड़े थे, जिसका शायद वारंट होगा। लेकिन सत्य यह था कि वारंट गिरफ्तारी के बाद फौरन कटता था, क्योंकि पुलिस पहले ही से मैजिस्ट्रेट के दस्तखत कराके फार्म अपने पास रख लेती थी।

धीरे-धीरे हलचल बढ़ती जा रही थी। वह अमन टूट गया था। जमींदारों मे एक बौखलाहट पैदा हो गई थी। जब मास्टर साहब को कुछ भी नही सूझता, वे अपनी छोटी बच्ची कमला को गोद में उठा लेते और

मंदिर की और चल पड़ते। वहाँ कीर्तन में घंटा-डेढ़ घंटा बिताकर जब वे लौटते, मन फिर भारी हो जाता।

स्कूल में वे देखते थे कि ग्राम-विकास पर विचार करने एक बड़ी मोटर में बैठकर कुछ खद्दरपोश आते थे। एक उनमें से आँखों पर चश्मा लगाते थे, साँवला-सा रंग था और दोहरा बदन। दूसरे की मूँछे ऐसी थी, जैसे बच्चा जाँघे चौड़ाकर बैठ गया हो। दोनों ही बड़ी मोटर मे बैठकर लौट जाते। सुना जाता था कि उन्होने अत्यंत दरिद्रता से रहना स्वीकार किया था। वे लोग सिर्फ आठ सौ रुपया महीना तनख्वाह पाएँगे। मास्टर साहब अपने ऊपर ही झुँझला उठते।

नई जिंदगी की लहरे-सी आती। वे मजदूरों के जुलूस को देखते, जो उमड़ता चला आता था। वे तरह-तरह के नारे लगाते। उनको देखकर पुलिसवाले भी मन-ही-मन सिहर उठते, क्योंकि उन मजदूरों की माँग में ईमान की पुकार होती। वे सीधी बाते चाहते थे, वे बाते जिनका पेट से सौदा होता था।

शहर के पास ही होने से गाँव में रोज नई-नई खबरें चल पहुँचती। ज्यादातर दूधवालों के मुँह, जो साईकिलों पर टंकी बाँधकर पहर रात रहे चल पड़ते और साँझको लौट आते। वे तरह-तरह की खबरें सुनाते। अखबार लाते। मास्टर साहब जब साँझ के समय किसी डगर पर निकलते, तो किसान उन्हे रोककर पूछते कि क्या जमींदारी जा रही है, या यह भी कोई नया खेल है ? क्या अब सबको पढ़ना पड़ेगा ? क्या परती धरती मिलेगी ? गाँव में चलते-फिरते अस्पताल और नुमायशे आया करेंगी। और इन सवालों से लेकर, तकावी, बीज के मामलों से होते हुए वे पूछते कि अगर कांग्रेस जमीदारी छीन रही। जमींदार क्यों उसमें जा रहे है, अंगरेजी राज में तो ये अलग रहते थे। पुलिस उन्हीं का साथ क्यों देती है ? मास्टर साहब जवाब देते और दिल में महसूस करते कि शहर

का कितना अजीब असर होता है। जब कभी वे अपनी ससुराल जाते, तो वहाँ किसान यह सब सवाल नहीं पूछते थे। शहर और फिर पास ही खुले हुए इस कारखाने से, जिसमें गाँव के अनेक नौजवान काम करने जाते थे, अजीब-सी चेतना फैलती जा रही थी। किसानों-से कुछ नौटवान पूछते-"मास्टर साहब, रो बाबू वही तो कहते है, जो पहले कांग्रेसवाले कहते थे।" मास्टर साहब क्या कहते ?

और घर आते ही वही उदासी। मास्टर साहब को एक विचित्र-सी थकान महसूस होती। वे अखबार पढ़ते है। फिर क्यो उनमें इतनी हिम्मत नही है कि किसानो को असली बात समझा दे। गरीब-गरीब है, अमीर अमीर। और तभी पत्नी और तीनों बच्चे-बच्चियाँ पास आ जाते। जिंदगी फिर लंबी छाया की तरह बढ़ने लगती।

दो

और उसके बाद दबाब बढ़ने लगा। हर बार छप्पर की मरम्मत को अगली बरसात के लिए छोड़ दिया जाए, तो वह कब तक पानी रोक सकता है ? डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूलों के मास्टरों ने जिले-भर में हड़ताल क र दी। उनके हिचकते हुए दिलों ने बड़ी हिम्मत के साथ बहुत पसोपेश के बाद यह तय किया कि बिना हड़ताल के अब कोई नतीजा नही निकलेगा। बेत भी बिना भीगे नहीं फूलता। पाँस की पोल में पानी डालने से वह कभी टिकता नहीं, दूसरी तरफ से वह जाता है। जगह-जगह जुलूस निकाले गए। जिले-भर के मास्टर आकर बड़े शहर में इकट्ठ हुए।

उनके जुलूसों के साथ सी.आई.डी. वाले चलते। पुलिस के सिपाही चलते। मास्टर कैसा भी देहाती और गरीब क्यों न हो, लेकिन उसमे एक बाबूपन होता है। शहर में बड़ी-बड़ी लारियो मे फौजो को इधर से उधर जाते देखते। मास्टर लोग काँपते हृदय से देखकर अनुभव करते,

जैसे ये सब उनके अपने लोग नही है। मगर फिर विचार आता कि वह सब लोग भी तो गरीब ही है। इन्हे ही ऐसा क्या मिल जाता है ? इनकी परिस्थिति में क्या उतनी ही भयानक मजबूरी नहीं है ? फिर उनसे अलगाव क्यों लगता है ?

जब उनका जुलूस शहर में से गुजारा, तो पुराने बुजुर्गो के मुँह झुके हुए थे। उन्हे जैसे यह काम अच्छा नही लगता था कि पढ़े-लिखे लोग हाथ में बड़े-बड़े पोस्टर लिए इधर-उधर घूमा करे। नारे लगाते फिरे। और वह भी किसलिए ? कि हम भूखे है। महँगाई बहुत भयानक है। नई सरकार बनी है, हमें खाने को क्यों नही मिलता ? थे, गरीब थे। पर आज तक सिर नहीं झुकाया था। आज तक उनकी हर जगह इज्जत हुई है। किसानों मजदूरों और पटवारियों ने सदा पहले राम-राम की है। गाँव के जमींदार, डाक्टर, तहसीलदार, सब उन्हें कुर्सी देकर बिठाते थे। वे कही नीचे तबके के लोगों में नहीं गिने गए। उनके पढ़ाए हुओं में कितनों ही को अच्छी जगई भी मिल चुकी हैं। कचहरी के पचासों मुंशी उनकी शागिर्दी से निकले है।

नए मास्टर कहते है, यह सिर झुकाना नही है, यह सचाई की पुकार है। जब मंत्रियों की तनख्वाह सरकार बनते ही इतनी जल्दी तय हो गई, तो उन्ही को क्यों भुलाया जा रहा है ? क्या वे काम नहीं करते ? दुनिया आगे बढ़ी जा रही है। मजदूर, किसान, सब अपने लिए संगठन करते है। वे स्वयं क्यों न करें। वे तो बेचारे बेपढ़े-लिखे है ; हमे तो यह कठिनाई भी नहीं।

आखिर 'इन्स्पेक्टर आंफ एज्युकेशन' के दफ्तर पर जाकर सब इकट्ठा हुए। दिन-भर बाहर बैठे रहे। एक 'डेप्यूटेशन' जाकर मिला। सब शिकायते नोट कर ली गई और जल्दी ही उन पर ध्यान देने का आश्वासन भी दिया गया। पर यह भी कहा गया कि अचानक ही 15 अगस्त के बाद

यह भूख इतनी तेज कैसे हो गई। अंग्रेजी ज़माने के अफसर थे। उनके "15 अगस्त' का मतलब था कि जो जैसा है, वैसा ही बना रहे। पर शहर के बाबुओं में एक हमदर्दी थी। वे कहते जरूर, क्या इनके पेट नही है ? सारे गाँवों और बच्चों का दारोमदार इन पर ही है। नए हिंदुस्तान की फसल के किसान यही तो है। इन्हें क्यों छोड़ा जाए ?

दूसरे दिन शहर के दैनिक पत्र में निकला-मास्टरों को शांति से काम लेना चाहिए। उन्हे किसान-मजदूरों-सा यह हुल्लाड़ अच्छा नही लगता। फिर साथ ही आश्वासन दिया गया था, उनके दुख-दर्द के साथ सहानुभूति दिखाई गई थी। मतलब यह था कि थर्ड क्लास का टिकट स्टेशन पर दे दिया गया था। डिब्बे में खचाखच भीड़ है, इसलिए सरकार जिम्मेदार नही। लेकिन घबराओ नहीं, हरी झंडी से चिढ़ो मत। कल फिर रेल आय, तब अपनी किस्मत आजमाना। और मास्टर लोग वह गीत गाते हुए फिर चल पड़े, जो स्काउटो के लिए धीरज का मंत्र बनाकर गाया गया था। इसी मंत्र को उन्होने आज तक गाया था, इसी को उनके बाप-दादों ने गाय था। मानो यह एक रेल की ढली-ढलाई पटरी थी, जिस पर बड़े-बड़े डिब्बे भागते है। पैदल इस पर नही जा सकता। इसके दोनो तरफ कंकड़-मिट्टी पड़ी है। कहाँ जाओगे ? कही रास्ता नही है।

मास्टर साहब लौट आए। गाँव खामोश पड़ा था। कुछ लोगो ने आकर पूछा भी, मगर मजबूरी से सिर हिलाकर चुपचाप चले गए। बोहरा तो जो ब्योज लेगा, वह लेगा ही। इसमे रोने-धोने की क्या गुंजाइश ? शाम की धूल उड़ने लगी। बैलों की पीठ पर हाथ रखे, पीछे-पीछे बाते करते, नंगे बदन, ऊँची धोती पहने किसाल घरों की ओर चल पड़े। ओवरी में खड़ी घूँघट मे से उनकी पत्नी उनकी राह देख रही थी। वे खाट पर जाकर बैठ गए। मौन। किंतु कुसुम की आँखों ने आँसू की डबडबाहट से काँपती पलको में जिंदगी का पानी भीचकर पूछ ही लिया-' 'क्या हुआ ?''

मास्टर साहब का मन किया कि कह दे, वे हारकर आ गए थे। पर उन्होने कहा-'भगवान कुछ-कुछ तो करेगा ही।''

कुसुम सबकुछ समझ गई। उसने उनकी टोपी और जूता उठा लिया और भीतर टाँगने चली। मास्टर साहब का सिर झुक गया। उन्होने देखा, वही चक्र वही परंपरा। ''पानी देना शांति की माँ''-उन्होने धीरे से कहा और खाट पर लेट गए। उन्हें लगा कि वे काफी थक गए थे।

तीन

हड़ताल टूट गई। आखिर कब तक जोश चलता ? हड़ताल एक बीमारी है। पहले लगता है, शरीर मे बल आ गया है, पर आदमी ज्यादा दिन निकलते जाने के साथ कमजोर होता जाता है। हड़ताल तोड़ने की दो तरकीबे है, या तो संगठन तोड़ो या लंबी खीच दो। अब हड़ताल के दिनों की तनख्वाह कटेगी या नही ? सबके दिमाग मे आया हुआ प्रश्न सुनकर मास्टर साहब चौक उठे। जिंदगी मे बगावत के पहलू से भी भयंकर है बगावत की हार का पहलू, जो उतना ही आवश्यक है, जितना जीत का दृढ़ विश्वास। 'कोई भी लहर'-मास्टर साहब ने मन-ही-मन कहा-'पहली चपेट मे चट्टान को तोड़ नही सकती। पर यह आदर्शवाद था। पुराने जमाने में गुरु जंगलों में रहते थे। आजकल अनमे त्याग की भावना नही है। पहले गुरुओं को त्याग करने की सामर्थ्य थी, क्योंकि उन्हे तब बहुत मिलता था।

उन्होने बच्ची के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। छोटी-सी वह कमला। माँ ने नई डिजाइन की जंफर फ्राक सी दी है। गाँव की अन्य बच्चियाँ कुर्त्ती पहनती है, या महेरी खा-खाकर तूंबी-जैसा पेट लिए नंगी फिरती है। कमसा धूल मे लथपथ थी।

गाँव के छोटे पुस्तकालय मे जाकर मास्टर साहब ने एक साप्ताहिक

पत्र उठा लिया । उसमे उन्होने एक लेख का शीर्षक पढ़ा-'रूस मे शिक्षा'। पढ़कर समझे, रूस मे सिर्फ या तो मजाक होते है, या सिर्फ झूठी खबरे फैलाई जाती है। वहाँ मास्टर मस्त रहता है, खाता है, पीता है, तब काम भी डटकर करता है। कुछ भी समझ मे नही आया। वे उठ खड़े हुए।

चलते-चलते उनका मन कचोट उठा। क्यों ? क्या वे सदैव ऐसे ही गरीब रहेगे ? उन्हे प्रश्न का उत्तर नही मिला। सामने देखा, जान-पहचान के लोग उन्हे राम-राम पालागन कहते हुए चले जा रहे है। मास्टर साहब मशीन की तरह रहे। उनको आज ऐसा लगा, मानो वे सबसे कमजोर थे, सबसे हीन थे। या तो सिर न उठाय, या उठाय तो फिर झुकाय नही।

कचहरी के अमलों में मुंशीजी दबदबे के आदमी थे। उन्होने मिलते ही कहा-"मास्टर साहब, अब तो आप भी क्रांतिकारी हो गए।"

मुंशीजी की बात से लगा, जैसे उसमे अपमान का कसैलापन था। मास्टर साहब का मन किया कि चुपचाप हँसकर टाल दे। पर सहा रहे गया। उन्होने कहा-"क्या करे मुंशीजी, जनम-भर इसी तरह गुजार दी। बहुत लड़कों पर सख्ती की, तो क्या मिल गया। जिनके लड़के हमारे यहाँ पढ़ते है, उन्ही के पास कौन दौलत है ?"

"क्या बात कहते है, मास्टर साहब !" मुशीजी ने मूँछो में से कहा-"गहना गढ़ाते है, कर्ज चुका दिया, रोज मुकदमा लड़ने आते है। अरे साहब, किसानों को ही तो मिलता है, और क्या हम पाते है ?"

"आपको क्या कमी है, मुंशीजी ? अब आप तो सफेद गाँधी टोपी लगाने लगे है। हमारे पास तो जो थी, वह पुरानी और मैली हो चली। हाँ, गाँववाले खाते है। पर कितने दिनों की बहार है ? खैर, हमे औरों से

क्या ? पेशा ही ऐसा है, जिसमें चाहे तो भी दूसरो से नहीं ले सकते। आपको भगवान ने ओहदा दिया है, ऊँची जगह दी है, दस आदमियों का काम आपसे निकलता है। क्यों न हो ? आखिर अफसर अफसर है। और हम क्या है ? हम तो धोबी के कुत्ते हैं-न घर के न घाट के ?''

उनके स्वर में कड़वापन था। तभी मुंशीजी ने ताना मारते हुए मुस्कराकर कहा-''तो फिर आप भी उन्हीं में मिल गए ?''

मास्टर साहब ने मुशिकल से खून का घूँट पी लिया। सँभलकर बोले-'मिले नहीं, तो क्या करे ? आप लोगों की ओर जब तक बढ़े, तब ही क्या मिला ? तो फिर उन्हीं में क्यों न जा मिले, जिनकी हैसियत असल मे अपनी-जैसी ही है ? भाई, हमसे किसी का काम निकलता होता, तो आँख के अंधे और गाँठ के पूरे, हमारी अंटी में भी कुछ भर ही जाते। पर अपनी झोली तो जब पलटी, दिन-भर की जमा हुई धूल ही बाहर गिरी। मरता क्या न करता।'

मास्टर साहब कहते तो कह गए, फिर लगा, मानो हृदय हो गया है। सचमुच वे किसको पढ़ाते थे ? उन्ही गरीब किसानों, आधे किसान, आधे मजूर और गाँव के नीचे तबके के लोगों को जिनमें जिंदगी की कोशिश ही बिखर गई है। फिर वे उनसे दूर कहाँ है ? क्यों वे अपने को गाँव के बड़े लेगों में समझते रहे ? इस झूठे सम्मान से उन्हे क्या मिलता है ? क्यों वे इतने मूर्ख थे कि लोग उन्हे छल रहे थे और वे इसमें अपना गौरव समझते थे ?

चार

उत्साह से मास्टर साहब ने पाठशाला खोली। स्वयं ही जहाँ-जहाँ धूल जम गई थी, कपड़े से साफ की। आज उन्होंने इस बात का भी इंतजार नही किया कि लड़के आएँ और वे उन्हें हुक्म दे। जब सबकी जिंदगी

तबाह है, और बड़े होकर इन लड़को को भी तबाही के कोल्हू मे बैल की तरह पिसना है, तब उन्हें बचपन में जो दो दिन का सुख मिलता है, उसे भी वे उनसे क्यों छीन ले।

धीरे-धीरे वक्त पर घंटी बजने लगी। एक रेल की पटरी का टुकड़ा लोहै की एक बड़ी कील से बजा दिया जाता था। कुछ देर बच्चे बाहर शोर करते रहे। मास्टर साहब सुनते रहे। फिर बच्चे आकर बैठ गए। उन्होंने देखा, सब छोटे-छोटे, सबके मुँह पर एक निर्मल छाया। लेकिन आँखों में चमक नही दिखाई देती। शहर के लड़को की शरारत मे हुड़दंग होता है, वह इनमें नही दिखता। उन्होने हाजिरी ली। एक-एक नाम पढ़ा। उत्तर मे 'हजिर साह' सुनते गए। जो नही आए थे, उनकी गैरहाजिरी लगाकर उन्होने रजिस्टर बंद कर दिया। फिर वे धीरे से उठे। कक्षा मे चुपचाप बैठे लड़के रोज की तरह सहमे हुए बैठे थे। मास्टर साहब ने धीरे-धीरे कहना शुरु किया- "आज बहुत दिन बाद स्कूल खुला है। इम्तहान बहुत दूर नहीं है। तुम्हारी पढ़ाई मे हर्ज हुआ है। अब खूब मन लगाकर पढ़ो। पढ़ने को अपने ऊपर लगान मत समझो। पढ़ने से अक्ल आती है। देखो, तुम्हारे यहाँ अब कंपोस्ट खाद बन रहा है या नही ?"

"जी हाँ !"-सबने कहा-"कहते है, बड़ी अच्छी चीज है ?"

"हाँ बेटा, बहुत अच्छी चीज है। लेकिन यह काम पढ़े-लिखे लोग जानते है। उनसे ज़रूर सीखो।"

उन्होने देखा, बच्चों को लगा रहा था, जैसे आज कोई नई बात हो गई है। उन्होने एक-दूसरे की ओर विस्मय से देखा। फिर कुछ ऐसा लगा, जैसे वे कुछ पूछना चाहते थे। पर किसी मे भी साहस नही हुआ।

मास्टर साहब ने फिर कहा-"तुम लोग कंपोस्ट बनाने में मदद देते हो न ?"

"देते है",-लड़को ने फिर कहा-"कहते है फसल बहुत अच्छी होती है उससे ?"

मास्टर साहब को सुख हुआ। लेकिन उन्होने सोचा, क्या केवल कंपोस्ट खाद से ही जिंदगी की खेती भी सुधर सकती है ? यह जो मनुष्य, जमींदार, गाँवों में ऊसर पड़े है, इन्हें कब जीता जायेगा, कब यह धरती भी किसानों के हल से जुतेगी ? काश, ये लोग भी काम करते। आज वह चिड़चिड़ापन न जाने कहाँ चला गया था। आज उन्हे वे बच्चे सिर-दर्द नहीं मालूम देते थे। कल तक वे बात-बात पर कहते थे-"क्यों तुम मेरा खून सुखाने को पैदा हो गए हो, कमबख्तो !" लड़के उनसे डरते थे। अकेले मे गालियाँ देते थे। उनकी नीरसता से लड़को की रुह काँपती थी। आज वह सबकुछ नहीं। आज वह अविश्वास धीरे-धीरे मिट रहा है।

इसी समय द्वार पर तीन लड़के दिखाई दिए। उनके चेहरे डर के मारे पीले पड़ गए थे। वे समझ रहे थे कि डाँट लगेगी या कान मले जाएँगे। पर कुछ नहीं हुआ। मास्टर ने उनकी ओर ऐसे देखा, जैसे अलाव की आग अपने आपमे भयानक होते हुए भी राह चलते को ठंड में हाथ सेकने को अपनी ओर आकर्षित करती है। मास्टर साहब ने सिर उठाकर इशारा किया। तीनो भीतर घुस आए। आज इन लड़कों की देरी से भी उन्हे गुस्सा नही आया। मास्टर साहब को अपनी ओर आता देखकर उनका दिल भीतर-भीतर बैठने लगा। लेकिन मास्टर साहब की आँखों में यद्यापि नानी की आँखोवाला दुलार न था ; वह लाड़ न था, जो बिगाड़ता है ; फिर भी पिता या काकावाला अपनापन था, जो शासन करके भी राह पर चलाना चाहता है। लड़के कुछ सकते की-सी हालत मे खड़े रहे। दर्जे के बाकी लड़के चुपचाप आनेवाली विपत्ति की आशा कर रहे थे।

"कहाँ गया था रे ?" मास्टर साहब ने उनमें से एक लड़के से पूछा।

हलवाई के नौकर के लड़के ने कहा-"सहर गया था, मास्टरजी।" उसकी आवाज काँप रही थी। उसे मार खाने कर डर लग रहा था।

"क्यों गया था ?"-उन्होंने फिर पूछा।

"मेरा बाप सहर ले गया था।"

"बाप नही, बेवकूफ"-मास्टर साहब ने कहा-"दादा, काका या पिता कहो, समझे ? खुद अपने बाप नहीं कहा करते।"

लड़के ने फिर कहा-"दादा की मीटिंग थी, सब हलवाइयों के नौकरों की। छुट्टी के दिन मिलने की राय हुई थी। मैं पढ़ा-लिखा था, इसीलिए ले गए थे।"

मास्टर साहब मुस्करा दिए। पढ़ा-लिखा उस्ताद खड़ा या सामने और तभी दूसरे लड़के ने मुँह लटकाकर कहा-"काका का पता नहीं है। पुलिस ने घर आकर तलाशी ली थी। पूछते थे, कहाँ भाग गया है ? मजदूरी करता है कि नेता बनने चला है ? हड़ताल करना चाहता था....."

लंबी कहानी थी। मास्टर साहब ने काटकर कहा-"फिर ?"

"पता नही, कही पुलिस से छिप गए है। जाने क्या होगा ?"

इसके स्वर में दहशत थी। उसने अंत में कहा-"उन्हीं को ढूँढ़ने गया था मैं। अम्मा ने भेजा था।"

"अम्मा से कहना"-मास्टर साहब ने कहा-"डरे नहीं।"

और वे हठात् चुप हो गए। तीसरा कुछ कहना चाहता था। उसके होठ फड़क रहे थे। पर मास्टर साहब उस भूल गए थे। उनके दिमाग मे

कुछ और था। वह लड़का चुप ही रहा। मास्टर साहब ने कहा-"अच्छा बेटों, बैठ जाओ।"

फिर उन्होंने लड़कों के मुखों की ओर देखा। उन्होंने अनुभव किया कि सबके मुख पर एक अपूर्व विस्मय था। मास्टर साहब को बहुत अच्छा लगा। आज सब लड़के उनकी ओर स्नेह से देख रहे थे-जैसे वे पहले की तरह आज उनसे डरते नहीं। जैसे मास्टर किसी बाहरी लादी गई मशीन का औजार नही, वरन् वह उनके अपने खेतों की फसल की तरह ही अपनी है। मास्टर साहब ने यह सब जल्दी-जल्दी सोच डाला। लड़के केवल उनके परिवर्तन को कुछ-कुछ महसूस कर रहे थे। वे सब बैठ गए। उन्होंने मास्टर साहब के मुँह पर एक चमक देखी, पर साथ ही एक उदासी भी देखी। मास्टर साहब को लग रहा था कि उन लोगों की गिरफ्तारी हो सकती है। फिर उनका बोझ, उनकी जिंदगी की जिम्मेदारी मास्टर साहब पर आ पड़ेगी। और इस विचार ने उन्हे यह चेतना दी कि उनमे कुछ शक्ति थी। वे कुछ जिंदे थे। वे कम-से-कम खुलेआम न सही, चुपचाप तो उन लड़कों को बता सकेंगे कि उनके बड़े क्यों गिरफ्तार होंगे। उन्होंने कहा-"खूब मन लगाकर पढ़ो। पढ़ने से जिंदगी सँभलती है। इसे बाहरी बोझ न समझो।"

तभी तीसरे लड़के ने उठकर कहा-"जरूर पढ़ूँगा, मास्टर साहब।"

मास्टर चौक उठे। लड़का कहता गया-"चाचा को गिरफ्तार कर लिया है। आप तो उन बाबू को पहचानते है-वे, जिनका रंग गोरा है। वे और चाचा दोनों पकड़ लिए गए। मैं कल इतवार को जानेवाला था, पर आज मुलाकात हुई। जेल के नौकरों ने कहा था-आज कपड़े दे जाना। सो हम गए। बाबू को तो 'बी' क्लास मिला है। वे बी. ए. पास थे न,

तो उन्हें तो कुछ आराम हो जाएगा। पर हमारे चाचा को पहले तो मामूली कैदी की तरह रखा गया। तब बाबू ने उनके साथ भूख-हड़ताल की। अब उनको 'सी' क्लास मिल गया है। जेल की रोटी में मास्टर साहब, रेत बहुत होती है, सो खाते में किसकिसाती है। कहते है- 'तू किसान था। वही कौन अच्छा खाता था ? यहाँ तो मुफ्त की तोड़ेगा बैठा-बैठा।' अगर मैं पड़कर बी.ए. पास हो जाऊँगा, तो फिर मुझे भी 'बी' क्लास में रखा जायगा,....क्यों, मास्टर साहब ?''

मास्टर साहब ने सबकुछ सुना। उन्हे लगा जैसे जमीन फट जाएगी। लड़के की निर्मल आँखे अपने प्रश्न का उत्तर चाहती थी।

शैलेष मटियानी

आधुनिक कथाकारों में शैलेष मटियानी का अपना विशेष स्थान है। उनकी कथा में व्यक्ति, समाज और दर्शन की भावना को देखा जा सकता है। 'तथ्य और सत्य' कहानी में जिस प्रकार से तथ्य और सत्य की व्याख्या की गई है वह अपने में पूर्ण है। सिद्धार्थ विद्या विहार में आचार्य ऐहित 'सत्य को खोज' पर व्याख्यानं दे रहे थे। उनका एक-एक तथ्य सत्य से मंजा हुआ, तर्क ज्ञान की कसौटी पर कुंदन-सा कसा हुआ था। कौशल नरेश भी उपस्थित थे। विद्या विहार की संस्थापिका माननीया मधुलिका भी आचार्य का भाषण सुन रही थी। अन्य श्रोताओं में तरुण - बौद्ध विशालाक्ष भी था। आचार्य के व्याख्यान ने मधुलिका और विशालक्ष के मन में तथ्य और सत्य के प्रति अभी भी संदेह था। आचार्य मधुलिका को पूर्ण उतर नहीं दे पाये थे। विशालक्ष तथ्य को शरीर और सत्य को आत्मा मानता है। अहं के कारण आचार्य विशालक्ष की मान्यता को स्वीकार नहीं करते है। मधुलिया को समझाते हुए विशालक्ष का कहना हैं कि तथ्य के माध्यम से ही सत्य का बोध होता है। चलते हुए वह कहता है कि सत्य तथ्य का गठबंधन तभी सम्भव है, जब दोनों का संगम विवेक-विराम की वेदी पर हो। मधुलिया विशालक्ष के भावों से प्रभावित हो भिक्षुणी बन जाती है।

तथ्य और सत्य

शैलेष मटियानी

सिद्धार्थ विद्या-विहार का विस्तृत विमर्श-कक्षा श्रोताओं से भरा हुआ था। जन-संकुलता के मध्य भी, कक्ष में सर्वत्र मौन और शांति का साम्राज्य था। विद्या-विहार के प्रधानाचार्य रौहित्य के पांडित्य ने जैसे सबकी चेतना को प्रज्ञा-शून्य कर दिया हो।

आचार्य रौहित्य 'सत्य की खोज' पर विशिष्ट व्याख्यान दे रहे थे। उनके अगाध-पांडित्य से अभिभूत, एकान्त मौन साधे, सभी आचार्य की दिव्य-वाणी का रसास्वादन कर रहे थे। एक-एक तथ्य सत्य से मँजा हुआ, एक-एक तर्क ज्ञान की कसौटी पर कुंदन-सा कसा हुआ।

स्वयं कौशल-नरेश भी उपस्थित थे। उनके पार्श्व की रत्नखचित स्वर्ण-पीठिका पर, शरत्-पूनों-सी प्रोज्ज्वल रूप-राशि वाली राजनर्तकी मधूलिका बैठी थी।

मधूलिका-ज्ञानार्जन के लिए जिज्ञासु, किन्तु अपनी अतुल रूप-राशि के प्रति प्रगल्भ थी! इस विद्या-विहार का निर्माण उसने स्वार्जित-सम्पत्ति से किया था। शताधिक निर्धन विद्यार्थी उसके कोष से मिलने वाली छात्र-वृत्ति से विद्याध्ययन करते थे।

अस्तु, वह नर्तकी होते हुए भी माननीया थी, और कौशल-नरेश तो उसकी सद्योन्मीलित रक्तोत्पल-सी छवि के दास थे ही।....

श्रोताओं में छात्र और आचार्य जन भी थे, इनके अतिरिक्त, राज्य के कतिपय गण्य-मान्य व्यक्ति और पाटलिपुत्र से कौशल भ्रमणार्थ आए हुए कुछ तरुण बौद्धभिक्षु थे, जिन्हें कौशल-नरेश अपने साथ-साथ लाए थे।

आचार्य रौहित्य का पांडित्यपूर्ण व्याख्यान समाप्त होते ही, सारा कक्ष करतलध्वनि से गूंज उठा। विद्वानों ने आचार्य के अगाध-ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

पर, दो व्यक्ति उस समय भी मौन साधे हुए थे, मधूलिका और बौद्ध तरुण विशालाक्ष !

आचार्य रौहित्य ने सबको नमस्कार किया। यशःप्रशस्ति-प्रदीप्त भ्रू-प्रदेश को किंचित्-कुंचित कर, मंद-मंद विहँसते हुए, मधूलिका से वे बोले-"देवि, आप क्यों मौन हैं ? लगता है, मेरे वक्तव्य का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ? पड़ा भी हो, तो आपने उसे स्वीकार नहीं किया, संभवतः ? कोई शंका ?"

मधूलिका, अपने गांभीर्य को मुस्कान की ओट में छिपाते हुए, बोली-

"नहीं तो, आचार्यवर ! मेरे मौन का कारण आपके पांडित्य के प्रति अश्रद्धा नहीं, परन जाने क्यों, मन की जिस कुंठा का निवारण मैं चाहती थी, वह नहीं हुआ। अभी-अभी आपने कहा, कि तथ्य से अलग सत्य का कोई अस्तित्व नहीं। बिना किसी तथ्य के माध्यम के हमें सत्य का बोध नहीं होता। अस्तु, तथ्य से परे सत्य की कोई स्थिति नहीं ?"

"हाँ, देवि !" आचार्य बोले-"मैने ठीक ही कहा था। तथ्य और सत्य दोनों को हम अपनी सहज बुद्धि से देखते-परखते हैं, अस्तु...."

'तो, आचार्य" बात काटकर, खिन्न-स्वर में मधूलिका बोली-"तथ्य और सत्य की परिणति भी एक होगी यह सच है, तो मेरा यह लास्य-जीवन ही, जो तथ्य-रूप से पूर्णरूपेण नारकीय और विलासिता का है, मेरा जीवन-सत्य है ? मैं अपने अंतस्तल में ज्ञान और विराग की लाख अलख जगाऊँ, विलासिता के इस तथ्य से परे उसका कोई मूल्य ही नहीं ?..."

"आप व्यर्थ ही उद्विग्न होती हैं, देवि !" आचार्य सदर्प बोले -

"जीवन की चरम-परिणति क्या होगी - यह बुद्धि से, विवेक से परे की बात है।"

"क्षमा करें, आचार्य।" कक्ष के कोने से बौद्ध तरुण विशालाक्ष आचार्य के पास आ गया। विनीत स्वर में बोला- 'अनपेक्षित रूप से तर्क करने की धष्टता के लिए, मैं क्षमा चाहता हूँ। पर, मेरा कर्त्तव्य मुझे बोलने को बाध्य कर रहा है। पांडित्य किसी को वाग्जाल से अभिभूत कर, निरुत्तर कर सकता है, आचार्य ! किंतु हृदय की शंकाओं का निराकरण कोरी बुद्धि से संभव नहीं ! विवेक और आध्यात्मिक-ज्ञान से शून्य ज्ञान, मस्तिष्क का उन्माद-मात्र होता है, आचार्य !'

फिर मधूलिका की ओर मुंह कर, विशालाक्ष बोला- 'आचार्य रौहित्य के तर्क अकाट्य हैं, यह मुझे स्वीकार नहीं, देवि ! तथ्य और सत्य एक नहीं है। जैसे शरीर और आत्मा एक नहीं। शरीर तथ्य है, आत्मा सत्य है, अस्तु....'

आचार्य रौहित्य क्रुद्ध हो गए, बोले- 'अनधिकृत व्यक्तियों को यहां वक्तव्य देने का कोई अधिकार नहीं। यह बौद्धों का भिक्षु-विहार नहीं, विध-विहार है, भिक्षु !'

फिर गर्व-भरी हँसी हँस कर, आचार्य बोले - 'तुम्हें अपने ज्ञान का दंभ हो, तो मुझसे शास्त्रार्थ कर लेना। लेकिन, यहाँ नहीं भिक्षु ! मैं तुम्हारा मान-मर्दन कौशल-नरेश की भरी सभा में करूंगा।'

'व्यर्थ का क्रोध आपको शोभा नहीं देता, आचार्य ! किसी की शंका-ओंका निराकरण कहीं भी, कोई भी कर सकता है-इसमें पांडित्य को चुनौती का प्रश्न क्यों ?'

क्षण-भर ठहर कर गंभीर स्वर में, विशालाक्ष बोला- 'आप से तर्क

वितर्क करना मुझे अभीष्ट नहीं। मैं तो देवी मधूलिका के हृदय में उपजे भ्रम का निवारण करना चाहता हूँ। आपने अपने दुरूह वाग्जाल से उनके विवेक को दिग्भ्रांत कर दिया है, आचार्य ! आपका पांडित्य साधारण जन को अप्रतिभ अवश्य कर सकता है, किन्तु उससे किसी के मनस्ताप का निवारण संभव नहीं। क्योंकि, स्वयं आपके विवेकचुक्षुओं पर ही अहंकार-आवरण पड़ा हुआ है।''

'लेकिन तुम्हें यहाँ, विद्या-विहार की मर्यादा और उसके विधान के विरुद्ध मैं देवी मधूलिका को कोई उपदेश नहीं देने दूँगा, धृष्ट भिक्षु।' - सक्रोध आचार्य बोले- 'मैं तुम्हें अभी, इसी समय निकल जाने का आदेश देता हूँ।'

विशालाक्ष ने हँस कर, मधूलिका की ओर देखा। मधूलिका उसे शून्य दृष्टि से ताकती रही। विशालाक्ष मुड़ा और द्वार की ओर चल पड़ा लम्बी-लम्बी डगें भरता हुआ।.....

पर, द्वार तक जाते-जाते उसके कर्ण कुहरों में एक मधुर स्वर गूँज उठा- 'ठहरो, भिक्षु !'

आज विशालाक्ष कौशल की सर्व-श्रेष्ठ रूपांगना, मधूलिका के अतिथि थे। उनकी नीली-गहरी, निर्विकार आँखें, उनका मृग-शावक-सा भोलापन और मन को सहज ही सुख पहुंचाने वाली दिव्य-वाणी सब कुछ, जैसे अनजाने ही, मधूलिका को आत्म-विस्मृत किए जा रहा था।

कभी जहाँ नूपुरों की ध्वनि गूँज-गूँज जाती थी, लास्य-संगीत की स्वर-लहरियों से निर्जीव पाषाण-भित्तियों की आत्मा भी आन्दोलित हो उठती थी, सुरा-सुन्दरी के भ्रू-कुँचन पर मणि-काँचन बरसा करता था ठकौशल की राजनर्तकी का वही भव्य-विशाल कक्ष, आज मौन था। विशालाक्ष की उपस्थिति ने जैसे वैभव के सारे उल्लास को शून्य कर दिया हो।

ओह, प्रशान्त महासागर-सी नीली-गहरी और दीप्ति-भरी आँखें जिन्हें देखते ही हृदय का समस्त ज्वार, भाटे की शांति में परिणत हो जाता है....

मधूलिका सोच रही थी, इसी कक्ष में वह कौशल-नरेश के साथ बैठा करती थी। पर, इन दोनों के सामीप्य में कितना अंतर है ?

कौशल-नरेश उस अवस्था को पहुंच चुके थे, जहाँ से चरण मृत्यु के शाश्वत-पथ में मील के पत्थर का प्रतीक बनता है ; जहाँ से तारुण्य, वार्धक्य की चट्टानों से टकराकर, लुढ़क पड़ता है। पर, उन बूढ़ी आँखों में विलासिता का विष-वृक्ष पूर्ववत् गहरी जड़ें समाए था।

लेकिन, यह भिक्षु ?

तारुण्य की लोल-लहरों से रक्ताभ-मुख कितना निर्विकार !

विशालाक्ष के इस सामीप्य में मधूलिका का विवेक जाग रहा था, किन्तु यौवन की उद्दाम-तरंगिणी.सी मधूलिका अंततः जैसे बीते वसंतों की उद्दाम-मादक स्मृतियों में अनायास ही खो जाती और वह सोचती.... वह सोचती.....

काश, यह भिक्षु, उसे कौशल-नरेश की तरह ही प्यार करता.....

भावावेश में आकर, मधूलिका ने अपनी बाँहें भिक्षु के गले में डाल दीं। विशालाक्ष निर्विकार बैठे रहे।

बोले- 'देवि ! मैं यहाँ अधिक ठहरूँगा नहीं। आप और मैं, दोनों एक तथ्य हैं, तथ्य रूप के प्रति मोह बढ़ाने से, भ्रांति का जन्म होता है मानव पथ-भ्रष्ट हो जाता है।'-बाल-सुलभ मुस्कान बिखेरते हुए, विशालाक्ष कहते गए -

'उस दिन आचार्य ने आपसे कहा था, कि तथ्य और सत्य में कोई अंतर नहीं, क्योंकि हम दोनों को अपनी सहज-बुद्धि से परखते हैं। उन्होंने

यह भी कहा था, कि 'बिना तथ्य के माध्यम के, हमें सत्य का बोध नहीं हो पाता।...'

'देवि, तथ्य के माध्यम से सत्य का बोध अवश्य होता है, पर इस दशा में तथ्य सत्य का पूरक-माध्यम मात्र है, न कि स्वयं सत्य ! तथ्य स्थूल, द्रष्टव्य होते हुए भी क्षण-भंगुर और सीमित है। सत्य बाह्य-चक्षुओं के लिए अदृष्ट होते हुए, सूक्ष्म होते हुए भी निस्सीम और विराट् !'

क्षण-भर ठहर कर, विशालाक्ष, मधूलिका के स्कन्धप्रदेश को स्नेह-पूर्वक थपथपाते हुए, बोले-'आपका यह नर्तकी-जीवन तथ्य है, किन्तु, यही आपके जीवन का अंतिम सत्य नहीं ! रहा प्रश्न, जीवन की चरम-परिणति का-सो, भद्रे जीवन की चरम-परिणति का बोध बुद्धि से परे हो सकता हैं, विवेक से परे नहीं। और विवेक का जन्म होता है, अंतर्मन्थन से। वस्तुतः जीवन की चरम-परिणति के प्रति जागरूक-दृष्टि रखना ही मुक्ति-मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा देता है, क्योंकि यह तथ्य-रूप शरीर नाशवान है, और सत्य-रूप आत्मा को आवागमन के बंधन से मुक्ति देना ही मोक्ष !'

'तो' 'मधूलिका बोली-'मेरे लिए मोक्ष का कोई मार्ग ?'

'भद्रे', विशालाक्ष बोले - 'जन्म जन्मान्तरों की सतत-साधना से ही मोक्षा-सिद्धि संभव है। आप अपने ज्ञान-दीप की बाती जलाए रहें, विराग की अलख जगाए रहें-मुक्ति का मार्ग कभी दीख पड़ेगा अवश्य। एक बात फिर दोहरा दूँ, तथ्य और सत्य का भेद न भूलें, देवि ! सबसे बड़ी बात, तथ्य भोग्य है और सत्य ग्राह्य। अभी तक आपने जीवन को 'भोग्य' ही समझा, 'ग्राह्य नहीं सो.....'

'लेकिन', मधूलिका ने तर्क किया-'बिना तथ्य का भोग किए, सत्य की उपलब्धि कैसे हो सकती है ? मैं आपके उपदेशों के प्रति श्रद्धावनत हूँ, देव ! सच, इस विलासिता के जीवन से मन ऊच गया है,

पर आपका सामीप्य.....आप और मैं.....'मधूलिका फिर सम्मोहित हो गई, बोली- 'आपका और मेरा, सत्य और तथ्य का गठबंधन...'

'आप भूल रही हैं, देवि !' विशालाक्ष मुस्कुरा दिये, 'मेरा आपका पथ अलग-अलग है, भद्रे ! तथ्य का भोग कर, सत्य ग्रहण करने की बात ऐसी ही है, जैसे मदिरापान कर मद्य निषेध का मार्ग खोजना ! तथ्य-भोग की लालसा से ही, इस नाशवान संसार के मोह-जाल में आसक्ति बढ़ती है। सत्य-तथ्य, एक-दूसरे के पूरक-माध्यम होते हुए भी दो समानान्तर रेखाएँ है, जिन्हें आत्म-बोध की तिर्यक्-रेखा ही एक-दूसरे से मिला सकती है !'

विशालाक्ष चल पड़े। बोले-'देवि, मैं चला ! सत्य-तथ्य का गठ-बंधन तभी संभव है, जब दोनों का संगम विवेक-विराम की वेदी पर हो।...अच्छा, कल्याणमस्तु !'

किन्तु, दूसरे ही दिन कौशल के राज-पथ पर एक भिक्षुणी, भिक्षु विशालक्ष के साथ, हाथ में कमण्डलु लिए, चली जा रही थी।

कौशल नरेश ने रथ से बाहर झाँका, और उस तरुणी-भिक्षुणी पर दृष्टि पड़ते ही, विस्मयान्वित हो, वे चीख उठे-'मधूलिका !'

उषा प्रियंवदा

आधुनिक नारी कहानीकारों में कहानीकार ऊषा प्रियंवदा का अपना विशेष स्थान है। लेखिका ने पारिवारिक और समस्या प्रधान कहानियों की यथार्थता को समझा है। सुबोध, माँ और वृन्दा एक ही परिवार के सदस्य हैं। बड़े लड़के सुबोध की नौकरी छूट जाती है। नौकरी न होने के कारण बहन वृन्दा उसको अनदेखा करती है। शोभा जिस के साथ उसका विवाह होने वाला था, वह भी टूट जाता है। जिन्दगी ने उसे भी गुलाब के फूल दिये थे, लेकिन उसने (सुबोध) स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया और अब शोभा भी नौकरी न होने के कारण उसकी न बन सकी। संम्भवतः लेखिका सुबोध को परिस्थितियों में डाल कर यह बातलाना चाहती है कि नाते-रिश्ते और आपसी प्रेम केवल धन के द्वारा बनाया जाता है, चाहे घर के ही लोग क्यों न हो ? उन्हें केवल धन से वास्ता है, व्यक्ति के सम्बंधो से नहीं। कहानी की कथा पारिवारिक वातावरण से जुड़ी है।

जिन्दगी और गुलाब के फूल

उषा प्रियंवदा

सुबोध काफी शाम को घर लौटा। दरवाजा खुला था, बरामदेमें हल्की रोशनी थी, और चौके में आग की लपटों का प्रकाश था। अपने कमरे में घुसते ही उसे वह खाली-खाली-सा लगा। दूसरे क्षणही वह जान गया कि कमरे का कालीन निकाल दिया गया है और किनारे रखी हुई मेज भी नहीं है। मेज पर कागज के फूलोंका जो गुलदस्ता रहता था, वह कुछ ऐसे कोण से खिड़की पर रखा था कि लगता था, जैसे मेज हटाते वक्त उसे वहां वैसे ही रख दिया गया हो।

उसने बहुत कोमलता से गुलदान उठा लिया। कागज के फूल थे तो क्या गुलदान तो बहुत बढ़िया कट ग्लासका था। पहले कभी-कभी शोभा अपने बाग के गुलाब लगा जाती थी, पर अब तो इधर, कई महीनोंसे यही बदरंग फूल थे और शायद यही रहेंगे। सुबोधने फिर खिड़कीपर गुलदान रखते हुए सोचा, हां, यही रहेंगे, क्योंकि शोभा की सगाई हो गयी थी और उसका भावी पति किसी अच्छी नौकरी पर था। सुबोध ने कोट उतार कर खूँटीपर टांग दिया।....आखिर कब तक शोभाके पिता उसके लिए अपनी लड़की कुँवारी बिठाये रखते ?....सुबोध खिड़की के पार देख रहा था-धूल भरी सांझ, थके चेहरे, बुझे हुए मन.....

फिर वह मांके पास आया। उसकी माँ चौके में चूल्हे के पास बैठी थी। वह वहीं पीढ़ेपर बैठ गया। कुछ देर कोई नहीं बोला। माँने दो-एक बार उसे देखा जरूर, पर कुछ कहा नहीं, पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रही ; ऐसी मूर्ति जिसकी केवल आँखें जीवित थीं।

एकाएक सुबोध पूछ बैठा, "अम्मा, मेरे कमरेका कालीन कहाँ गया ? धूप में डाला था क्या ?"

बायें हाथ से धोती का पल्ला सिरपर खींचती हुई माँ बोली, "वृन्दा अपने कमरे में ले गयी है । उसकी कुछ सहेलियाँ आज खानेपर आयेंगी ।"

सुबोधको अपनेपर आश्चर्य हुआ कि वह इतनी-सी बात पहले ही क्यों न समझ गया ? उसकी सारी चीजें वृन्दा के कमरे में जा चुकी थीं, सबसे पहले पढ़नेकी मेज, फिर घड़ी, अरामकुर्सी और अब कालीन और छोटी मेज भी । पहले अपनी चीज वृन्दा के कमरेमें सजी देख उसे कुछ अटपटा लगता था, पर अब वह अभ्यस्त होगया था यद्यपि उसका पुरूष हृदय घर में वृन्दा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था ।

उसे अनमना हो आया देख माँने कहा, "तुम्हारे इन्तजार में मैने चाय भी नहीं पी । अब बना रही हूँ, फिर कहीं चले मत जाना ।" और पतीली का ढँकना उठाकर देखने लगी ।

सुबोध दोनों हाथोंकी उँगलियाँ एक दूसरे में फँसाये बैठा रहा । उसके कन्धे झुक गये और उसके चेहरेपर विषाद और चिन्ता की रेखाएँ गहरी हो गयीं । सशंक नेत्रोंसे माँ उसे देखती रही । मन-ही मन कई बातें सोचीं कहनेकी, मौन का अन्तराल तोड़ने की, पर न जाने क्यों वाणी न दे सकी । उसकी आंखोंके सामने ही सुबोध बदलता जा रहा था । इस समय उसके नेत्र मां पर अवश्य थे, पर वह उनसे हजारों मील दूर था । मौन रहकर जैसे वह अपने अन्दर अपने आपसे लड़ रही हो । काश, सुबोध फिर वही छोटा-सा लड़का हो जाता जिसके वास वह अपने स्पर्श से दूर कर देती थी । पर सुबोध जैसे अब उसका बेटा नहीं रहा था, वह एक अनजान, गम्भीर, अपरिचित पुरुष हो गया था, जो दिन भर भटका करता था, रातको आकर सो रहता था । सुखके दिन उसने भी जाने थे । अच्छी नौकरी थी, शोभा थी । अपने पुराने गहने तुड़ाकर मांने कुछ नयी चीजें बनवा ली थी, और अब वे नये बुन्दे और बालियां, हार और कंगन बक्स में पड़े

थे। शोभा की शादी होने वाली थी और सुबोध बदलता जा रहा था।

दो धुँधली, जलभरी आँखें दो उदास आँखों से मिलीं। उनमें एक मूक अनुनय थी। सुबोध ने मांके चेहरेको देखा और मुस्करा दिया। शब्द निरर्थक थे, दोनों एक-दूसरे की गोपन व्यथा से परिचित थे। उनमें एक मूक समझौता था। मांने इधर बहुत दिनों से सुबोध से नौकरी के विषय में नहीं पूछा था, और सुबोध भी अपने आप यह प्रसंग न छेड़ना चाहता था।

उसने कहा, "देखो, शायद पानी खोल गया।"

माँ चौंकी, दो बार जल्दी-जल्दी पलक झपकाये। फिर खड़ी होकर आलमारीसे चायदानी उठायी। उसे गर्म पानीसे धोया, बहुत सावधानीसे चाय की पत्ती डाली और पानी उँड़ेला। फिर उसपर टिकौजी लगा दी। वह टिकौजी वृन्दाने काढ़ी थी और उसकी शादी की आशा में बरसों माँ बक्स में रखे रहीं। अब उसे रोज व्यवहार करना मां की पराजय थी। उससे बड़ी पराजय थी सुबोधकी, जो अपनी छोटी बहनकी शादी नहीं कर पाया था। टिकौजी पर एक गुलाबका फूल बना था और सुबोध उन गुलाब के फूलों की याद कर रहा था, जो शोभा उसके कमरे में सजा जाती थी, उन बाली और बुन्दों की सोच रहा था, जो शोभा अब नहीं पहनेगी ....

दूध गरमकर और प्याला पोंछकर मां ने चाय सुबोध के आगे रखदी। सुबोध पीढ़ेपर पालथी मारकर बैठ गया, और चाय छानने लगा।

मां अपनी कोठरीमें जाकर कुछ खटर-पटर कर रही थी। जरा देर में ही एक तश्तरीमें चांदीका वर्क लगा हुआ सेवका मुरब्बा लाकर माँने उसके सामने रख दिया और बड़े दुलार से कहा, "खा लो!"

अपने विचार पीछे ठेलकर, कुछ सुस्त हो, हँसते हुए सुबोध ने कहा, "अरे अम्मा! बड़ी खातिर कर रही हो! क्या बात है?"

माँने स्नेह-कातर कण्ठसे कहा, "तुम कभी ठीक वक्तसे आते भी हो ! रातको दस-ग्यारह बजे आये। ठण्डा-सूखा खा लिया। सुबह देर से उठे, दोपहर को फिर गायब। कब बताऊँ, कब दूँ ?"

यह चर्या तो सुबोध की पहलेभी थी। तब वृन्दा और मां दोनों उसके इंतजार में बैठी रहती थीं। वृन्दा हमेशा बाद में खाती थी। सुबोध की दिन-चर्या के ही अनुसार घर के काम होते थे। पर तब वृन्दा नौकरी नहीं करती थी, तब सुबोध बेकार न था। अब खाना वृन्दा की सुविधा के अनुसार बनता था। सुबह उसे जल्दी उठना होता था, इसलिए रात को जल्दी खाकर सो जाती थी। जब नौ बजे वृन्दा खा लेती, तो वह चाय पीता। पहले जबतक वह स्वयं अखबार न पढ़ लेता था, वृन्दाको अखबार छूने की हिम्मत न पड़ती थी, क्योंकि वह हमेशा पन्ने गलत तरहसे लगा देती थी। अब उसे अखबार लेने वृन्दा के कमरे में जाना पड़ता था और इसलिए उसने घर का अखबार पढ़ना छोड़ दिया था।

जूठे बर्तन समेटते हुए माँने कुछ कहना चाहा, पर रुक गयी। उसका असमंजस भांप कर सुबोध ने पूछा, "क्या है ?"

प्याला धोते हुए, मन्द स्वर में माँने कहा, "घर में तरकारी कुछ नहीं है।"

सुबोध ने उठकर कील पर टँगा मैला थैला उतार लिया। मांने आंचल-की गाँठ खोलकर मुड़ा-तुड़ा एक रुपये का नोट उसे थमा दिया और कहा, "जरा जल्दी आना ! अभी सारी चीजें बनाने को पड़ी हैं।"

सुबोध कोट पहने बिना ही बाजार चल दिया। यह पतलून वह काफी दिनों से पहन रहा था। कमीजके फटे हुए कफ और कालर काफी गन्दे थे, पर उसने परवाह नहीं की। पर दोनों हाथोंसे थैले का मुँह पकड़कर उसमें गन्दी तराजू से मिट्टी-लगे आलू डलवाते हुए सुबोध को एक

झटका-सा लगा। उसके पास ही किसी का पहाड़ी नौकर भाव पूछ रहा था। उसके चीकट बालोंसे माथेपर तेल बह रहा था, मुंह से बिड़ी का कड़वा धुआं निकल रहा था। वह भी थैला लिये था और तरकारी लेने आया था। सुबोध अचानक ही सोच उठा कि वह कहां से कहां आ पहुँचा है ! अपने अफसरकी अपमानजनक बात सुनकर तो उसने अपने आत्म सम्मान की रक्षा के लिए इस्तीफा दे दिया था, लेकिन अब कहाँ है वह आत्म-सम्मान ? छोटी बहनपर भार बनकर पड़ा हुआ है। उसे देखकर माँ मन ही मन घुलती रहती है। जिन्दगीने उसे भी गुलाबके फूल दिये थे, लेकिन उसने स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया और अब शोभा भी।

हाथ झाड़कर सुबोधने पैसे दिये और चल पड़ा। इस सबके बावजूद उसके अन्दर एक तुष्टि का हल्का-सा आलोक था कि इस्तीफा देकर उसने ठीक ही किया। उसके जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति अपमान का कड़वा घूँट कैसे पी लेता ? स्वाभिमान ? सुबोध के ओंठ एक कड़वी मुस्कान से खिंच उठे। वाह रे स्वाभिमान ! उसने अपने आप से कहा। उसे वह सब बातें स्पष्ट होकर फिर याद आ गयीं, वे बातें, जो रह-रहकर टीस उठती थीं। सुबोध स्मृति का एलबम खोलने लगा। हर चित्र स्पष्ट था।

FLASHBACK नौकरी छोड़कर वह कुछ महीने घर नहीं लौटा, कहीं दूसरी नौकरी खोजता रहा और जब लौटा तो उसने घरका चित्रही बदला हुआ पाया। उसकी अनुपस्थितिमें वृन्दाने उसकी मेज ले ली थी और उसके लौटनेपर वृन्दा ने आज्ञा से कहा था, "दादा, आप क्या करेंगे मेजका ? मुझे काम पड़ेगा।"

सुबोध कुछ तीखी-सी बात कहते-कहते रुक गया। कई सालमें, घिसट-घिसटकर बी० ए०, एल० टी० कर लेने और मास्टरनी बन जाने से ही जैसे वृन्दा का मेज पर हक हो गया हो ! कोई अध्यापिका होने से ही पुस्तकोंका प्रेमी नहीं हो जाता। सुबोध की उस मेज पर अब जूड़े के

काँटे नेल-पालिशकी शीशी और गर्द-भरी किताबें पड़ी रहती थीं और फिर कुछ दिनों बाद माँने कहा, "वृन्दा को रोज स्कूल जाने में देर हो जाती है। अपनी अलार्म घड़ी दे दो, सुबोध !"

सुबोध ने कठोर होकर कहा था, "नयी घड़ी खरीद क्यों नहीं लेती ? उसे क्या कमी है ?"

माँने आहत और भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से उसे देखकर कहा, "उसके पास बचता ही क्या है ! तुम खर्च करते होते तो जानते !"

"नहीं, मुझे क्या पता ? हमेशा से तो वृन्दा ही घरका खर्च चलाती आई है। मैं तो बेकार हूँ, निठल्ला।" और झुंझलाकर सुबोधने धड़ी उसे दे दी थी।

सबसे अधिक आश्चर्य तो उसे वृन्दा पर था। अक्सर वह सोच उठता कि यह वही वृन्दा है, जो उसके आगे-पीछे घूमा करती थी उसके सारे काम दौड़-दौड़कर किया करती थी ! जब भी उसने चाय मांगी, वृन्दा ने चाय तैयार कर दी। और अब ? एक रात जरा देरसे आनेपर उसने सुना, "वृन्दा बिगड़कर मां से कह रही थी काम-न-धन्धा, तब भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लें। तुम कब तक जाड़े में बैठोगी, मां ? उठाकर रख दो, अपने आप खा लेंगे।"

उसके बाद सुबोध रात को चुपचाप आता। ठण्डा खाना खाकर अपने कमरे में लेट जाता। सुबह जग जाने पर भी पड़ा रहता और वृन्दा के चाय पी लेने पर उठकर चाय पीता। बाजार से सौदा ला देता। मैले ही कपड़े पहनकर बाहर चला जाता। और जब थक जाता, तो खिड़की के बाहर देखने लगता।

मां प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़ी थीं। उनके हाथ में थैला देकर वह अपने कमरे में चला गया। कमरा उसे फिर नग्न और सूना-सा लगा। जूते

उतारकर वह चारपाई पर लेट गया। चारपाई बहुत ढीली थी। उसके लेटते ही दरी सिकुड़ गयी। तकिया नीचे खिसक आया। दरी की सिकुड़नें पीठ में गड़ती रहीं। सुबोध की आँखों बंद थीं। हाथ शिथिल और कान अन्दर और बाहर के विभिन्न स्वर सुनते रहे। खिड़की के पास से गुजरते दो बच्चे, सड़क पर किसी राही की बेसुरी बजती बाँसुरी, खटखट करते दो भारी जूते, अन्दर बर्तन की हल्की खटपट, तरकारी में पानी पड़ने की छन्न और खींची जाती चारपाई के पायों की फर्श से रगड़....

तभी बाहर का दरवाजा खुला और वृन्दा ने कुछ तीखे से स्वर में पूछा, "अम्माँ, दादा घर में हैं ?"

सुबोध सुनकर भी नहीं उठा। माँ का उत्तर सुन वृन्दा उसके कमरे के दरवाजे पर खड़ी होकर बोली, "दादा ताँगेवाले को रुपया भुनाकर बारह आने दे दो।"

सुबोध ने चप्पलों में पैर डाले, उसके हाथ से रुपया लिया और बाहर आया।

उसकी दृष्टि सामने खड़ी शोभा से मिल गयी उसके नमस्कार का संक्षिप्त उत्तर दे वह बाहर आ गया। नोट तुड़ाकर ताँगेवाले को पैसे दिये और फिर अन्दर नहीं गया। पड़ोस में एक परिचित के घर बैठ गया, और शतरंज की बाजी देखने लगा।

वहां बैठे-बैठे जब उसने मन में अन्दाज लगा लिया कि अबतक शोभा और निर्मला खाना खाकर चली गयी होंगी, तो वह घर आया। सड़क पर सन्नाटा हो गया था। बत्तियों के आस-पास धुँधले प्रकाश का घेरा था, और पानवाला, ग्रहकों की प्रतीक्षा में चुप और स्थिर बैठा था।

वृन्दाने झुँझलाकर कहा, "कहाँ चले गये थे, दादा ? शोभा और निर्मला कबसे घर जाने को बैठी हैं ! तुम्हें पहुंचाने जाना है ।"

"मुझे मालूम नहीं था" सुबोधने कहा !

"जैसे कभी शोभा को घर पहुँचाया नहीं है !', वृन्दा ने कहा ।

"तब" सुबोध ने सोचा, तब शोभा की सगाई कहीं और नहीं हुई थी, तब वह बेकार न था । शोभा उससे शरमाती थी, पर उसके गुलदान में फूल लगा जाती थी । माँ नये गहने बनवा रही थी, और वृन्दा अपने कमरे में बैठी-बैठी कुड़ती थी, क्योंकि वह बदसूरत थी और उससे कोई शादी करने को राजी नहीं होता था ।....

"अच्छा तो चले" सुबोधने शोभा की ओर नहीं देखा ।

पर शोभा बोल पड़ी, "हमें जल्दी नहीं है । आप खाना खा लीजिए ।"

मांने कढ़ाई चूल्हे पर चढ़ा दी । वृन्दा निर्मला को लेकर अपने कमरे में चली गयी । सुबोध बैठ गया और शोभा ने उसके आगे तिपाई लाकर रख दी । फिर उसने रेशमी साड़ी का आंचल कमर में खोंस लिया और थाली लाकर उसके सामने रख दी । सुबोध नीची नजर किये खाने लगा । चौकेसे बरामदे, बरामदेसे चौके में बार-बार जाती हुई शोभाकी साड़ीका बार्डर उसे दिखाई देता रहा, हरी साड़ी, जोगिया बार्डर, जिस पर मोर तोते कढ़े हुए थे । कभी-कभी एड़ियां भी झलक उठतीं, उजली, चिकनी एड़ियाँ । सुबोध को लगता कि वह अतीत में पहुंच गया है । और शोभा वही है, वही जिससे कभी उसकी प्यार की बातें नहीं हुई, पर जो अनायासही उससे शरमाने लगी थी । शायद उसे पता चल गया था कि उसके पिताने सुबोध से बात-चीत शुरू कर दी है....और शायद अबतक शादी भी हो जाती, अगर सुबोध को कोई दूसरी नौकरी मिल जाती या अगर सुबोध पहली अच्छी नौकरी न छोड़ता.....

सुबोधने खाना बन्द कर दिया। पानी पीकर हाथ धोने उठा तो शोभा झट से हाथ धुलाने लगी। उसकी आँखों में विनयभरी कातरता थी, उसके मुख पर उदासी, पर उसके बालों से सुबास आ रही थी।

जब वह ताँगा लेकर आया तो शोभा माँ के पास चुप खड़ी थी और माँ उसके सिर पर हाथ फेर रही थीं

रास्तेभर दोनों चुप रहे। सबसे पहले निर्मला का घर आया, उसके उतर जाने पर शोभा ने आँसू भरे कण्ठ से कहा, "आप यहाँ पीछे आ जाइए न !" वह उतरकर पीछे आ गया, तब बोली, "कुछ बोलेंगे नहीं ?"

"क्या कहूँ ?" सुबोधने उसकी ओर मुड़कर उसे देखते हुए कहा।

शोभा की आँखें छलक रही थीं। पोंछकर कहा, "मैंने तो पिताजी से बहुत कहा। फिर आखिर मैं क्या करती ?"

"मैं तो कुछ भी नहीं कह रहा हूं। इस बात को स्वीकार कर लो कि मैं जिन्दगी में फेलियर हूं, कम्पलीट फेलियर। कुछ नहीं कर सका ! जैसे मेरी जिन्दगी में अब फुलस्टाप लग गया है। अब ऐसे ही रहूँगा। तुम्हारे फादर ने ठीक ही किया। तुम सुखी होओगी। प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूखकी, पेटकी ! वह आग धीरे-धीरे सब कुछ लील लेती है....."

"आप इतने बिटर क्यों हो गये हैं ?"

"जिन्दगी ने ही मुझे बिटर बना दिया है" फिर जैसे जानकर ताँगेवाले से कहा, "अरे बड़े मियाँ ! लौटा ले चलो, घर तो पीछे छूट गया।"

शोभा उतरी। कुछ क्षण अनिश्चित-सी खड़ी रही। सुबोध के हाथ बढ़े, पर फिर पीछे लौट आये, "अच्छा शोभा।"

"नमस्ते", शोभा ने कहा और वह अन्दर चलीगयी। ताँगे में अकेला सुबोध सड़क पर घोड़े की एकरस टापों के शब्द को सुनरहा था। कभी-कभी ताँगेवाला खाँस उठता और वह खाँसी उसका शरीर झिंझोड़ जाती। अँधेरा...खाँसी.....आखिरी सपनकी भी मौत!

X X X

सुबह उठकर सुबोध ने सबसे पहले बरामदे में बैठे धोबी को देखा। जितनी देर में उसके लिए चाय बनी, उसने अपने सारे गन्दे कपड़े इकट्ठे कर, उनका ढेर लगा दिया। आलमारी में सिर्फ एक साफ कमीज बची थी, पीठपर फटी हुई। उसे ढकने के लिए सुबोध ने कोट पहन लिया। कोट को भी काफी दिनों से धोबी मिला और उसने सुबोध को दुबारा सलाम किया।

"कपड़े जरा जल्दी लाना समझे ?" कुछ रोब से सुबोध ने कहा।

"अच्छा बाबूजी", धोबी चला गया।

कमरे में धुसते ही मैले कपड़ों का ढेर उसे वैसे ही दिखायी पड़ा, जैसे की छोड़ गया था। उसने वहीं रुककर पुकारा, "अम्मा! मेरे कपड़े धुलने नहीं गये।"

"पता नहीं बेटा। वृन्दा दे रही थी, उससे कहा था कि तुम्हारे भी दे दे....."

सुबोध को न जाने कहाँ का गुस्सा चढ़ आया। चीखकर बोला, "कितने दिनों से गन्दे कपड़े पहन रहा हूँ! पन्द्रह दिन में नालायक धोती आया, तो उसे भी कपड़े नहीं दिये गये। तुम माँ बेटी चाहती क्या हो ?

आज मैं बेकार हूँ, तो मुझसे नौकरों-सा बर्ताव किया जाता है। लानत है ऐसी जिन्दगी पर।"

माँ त्रस्त हो उठीं। जब सुबोध का कण्ठ स्वर इतना ऊँचा हो गया कि बाहर तक आवाज जाने लगी तो वह रो दीं। उन्होने कुछ कहना चाहा, मगर सुबोध ने अवसर नहीं दिया। कहता गया, "मुझे मुफ्त का नौकर समझ लिया है ? पहले कभी तुमने मुझे यह सब काम करते देखा था ? फिर उसके कण्ठ की नकल करता हुआ बोला, "घर में तरकारी नहीं ! वृन्दा की सहेलियाँ खाना खाएंगी। उधर हमारी बहन हैं कि हुकूमत किया करती हैं ! अब मैं समझ गया हूँ कि मेरी इस घर में क्या कद्र है। मैं आज ही चला जाऊँगा। तुम दोनों चैन से रहना।"

कहता-कहता वह घर से बाहर आ गया। अपनी छटपटाहट में उसके अन्दर एक तीव्र विध्वंसक प्रवृत्ति जाग उठी थी। उसका मन चाह रहा था कि जो कुछ भी सामने पड़े, उसे तहस-नहस कर डालो। वह चलता गया और उसी धुन में एक साइकिल सवार से टकरा गया। वह गिर पड़ा, उसके ऊपर साइकिल आ गयी और वह व्यक्ति सबसे ऊपर। जब उसकी कोहनियाँ खुरदुरी सड़क से छिली, और एक तीव्र पीड़ा हुई तो उसका ध्यान बँटा। वह कुछ हक्का-बक्का-सा रह गया। उसने पाया कि उस व्यक्ति ने उससे तकरार नहीं की, अपने कपड़े झाड़े और साइकिल उठाते हुए कहा, "भाई साहब, जरा देखकर चला कीजिए। चोट तो नहीं आयी।"

अगर वह लड़ता तो उस मूड में शायद सुबोध मारपीट करने को उतारू हो जाता। पर उसकी अप्रत्याशित विनम्रता से सुबोध ठिठककर रह गया।

जब सुबोध ने उठकर चलने की कोशिश की, तो पाया कि बांयाँ पैर सूजने लगा है। लंगड़ाता हुआ वह पार्क की बेंच पर आकर बैठ

गया। उसकी दाहिनी कोनी से खून टपक रहा था। जरा-सा भी हि
से पैर में तीव्र पीड़ा होने लगती थी। उसने सँभालकर पैर बेंच पर रख लि
और लेट गया।

अपना ध्यान पीड़ा से हटाने के लिए वह फूलों को देखने लगा
उसकी बैंच के पास ही गुलाब की धनी बेल थी, जिसमें हल्के पीले फू
थे। दर्द बढ़ता जा रहा था। उसने हिलना-डुलना भी बन्द कर दिया। कु
देर स्थिर पड़े रहने से दर्द में विराम हुआ, तो उसके ख्याल फिर सबेरे
घटना पर केन्द्रित हो गये।

उसका पैर हिला और दर्द की एक तेज लहर उठकर पूरे बाँयें
मेंव्याप्त हो गयी। सुबोध ने ओंठ भींच लिये।

जाड़ों की धूप थी पर लोहे की बेंच धीरे-धीरे गरम होती जा र
थी और बेंच का एक उठा हुआ कोना उसकी पीठ में गड़ रहा था।
वह हिला-डुला नहीं। आँखों खोलकर सड़क की ओर देखा, तो स्कू
जाते हुए बच्चे, साइकिलें, खोमचे वाले....उसने आँखें बन्द कर लीं। ज
पैर का दर्द कम होता, तो कोहनी छरछराने लगती। पर इस आत्म-पीड़
से जैसे उसे कुछ सन्तोष-सा हो रहा था।

वह कब सो गया, उसे पता नहीं। जब आँखें खुलीं, तो सूरज
पर था और बेंच तप रही थी। वह उठकर, बाँयाँ पैर घसीटता और
सहता हुआ छाँह में घास पर लेट गया। उस पर एक बेहोशी-सी छा
जा रही थी। घास का स्पर्श, शीतल था, सुखदायी हवा में गुलाब के फू
की सुबास थी, पर उसे चैन न था।

उसे अचानक माँ का ध्यान आ गया। शायद वह चिन्तित दरवा
पर खड़ी हों, शायद वह उसके इंतजार में भूखी हों। उसने एक लम्बी सां
ली और बाहें सिर के नीचे रख लीं।

दिन कितना लम्बा हो गया था कि बीत ही नहीं रहा था। जैसे एक युग के बाद आकाश में एक तारा चमका और फिर अनेक तारे चमक उठे। सुबोध घास से उठकर फिर बेंच पर लेट गया। उसके सिर में भारीपन था, मुँह में कड़ुहाट, पैर में जैसे एक भारी पत्थर बंधा था। सारा दिन हो गया था, पर उसे कोई खोजता हुआ नहीं आया। वृन्दा को तो पता था कि वह अक्सर पार्क में बैठा करता है। मगर उसे क्या फिक्र !

पार्क से लोग उठ-उठ कर जाने लगे थे। बच्चे, उनकी आयाएँ, स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये घूमने आनेवाले प्रौढ, दो-दो चोटियाँ किये हँस-हँसकर एक-दूसरे पर गिरती मुहल्ले की लड़कियाँ.....पार्क शान्त हो गया। हरी घास पर बच गये मूँगफली के छिलके, पुड़ियों के कागज के टुकड़े, तोड़े गये फूलों की मसली हुई पंखुड़ियाँ....

तीन फाटक बन्द कर लेने के बाद चौकीदार सुबोध की बेंच के पास आकर खड़ा हो गया।

"अब घर जाओ, बाबू, पार्क बन्द करने का टेम हो गया।"

बिना कुछ कहे सुबोध उठ गया। दो-एक कदम लड़खड़ाया, फिर चलने लगा। हर बार जब बायाँ पैर रखता, तो दर्द होता। धीरे-धीरे लँगड़ा-लँगड़ा कर वह पार्क से बाहर निकल आया।

दरवाजा खुला था। बरामदे में मद्धिम रोशनी थी। चौक में अँधेरा। वह अपने कमरे में आया। कोने में मैले कपड़ों का ढेर था। ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर, तिपाई पर खाना ढंका हुआ रखा था।

सुबोध चारपाई पर बैठ गया, और तिपाई खींचकर लालचियों की तरह जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर खाने लगा।

नलिन विलोचन शर्मा

नलिन विलोचन शर्मा की कहानियों में मनोवैज्ञानिक, व्यक्ति औ समाज के सत्य की प्रतीती है। पैसा और अधिकार व्यक्ति की हर कमजो को ढक लेते है। सेन साहब अपनी पाँच लड़कियों से किसी प्रकार चिंति नहीं है। किन्तु इकलौते बेटे खोखा की किसी भी गलती पर ध्यान नह देते, चाहे पर कैसी भी बेहूदी शरारत क्यों न करें ? दूसरी ओर उन्हीं के अहाते के एक कोने में आउट हाऊस में रहने वाला उनकी फैक्टरी के किरानी गिरधरलाल के बेटे मदन ने खोखा को जब पीटा तो गिरधरलाल को नौकरी और आउट हाऊस खाली करने का आदेश मिल गया गिरधरलाल को गर्व है कि जो कार्य वह नहीं कर पाया उसे उसके बेटे मद ने पूरा किया। कहानी में मानवीय भावना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुअ है। पारिवारिक परिवेश में ही कथा का आदी और अन्त होता है। जिसमें उच्च और निम्न वर्ग की सत्यभावना को व्यक्त करना लेखक का उद्देश रहा है।

विष के दाँत

नलिन विलोचन शर्मा

सेन साहब की नई मोटरकार बँगले के सामने बरसाती में खड़ी है, काली चमकती हुई, स्ट्रीम लाइंड, जैसे कोयल धोंसले में कि कब उड़ जाए। सेन साहब को इस कार पर नाज है-बिलकुल नई मॉडल, साढ़े सात हजार में आई है। काला रंग, चमक ऐसी कि अपना मुँह देख लो। कहीं एक धब्बा दीख जाए तो क्लीनर और शोफर की शामत ही समझो। सेन साहब की सख्त ताकीद है कि खोखा-खोखी गाड़ी के पास फटकने न पाएँ।

लड़कियाँ तो पाँचों बड़ी सुशील हैं, पाँच-पाँच ठहरीं और सो भी लड़कियाँ ! तहजीब और तमीज़ की तो जीती-जागती मूरत ही हैं। मिस्टर और मिसेज सेन ने उन्हें क्या करना चाहिए, यह सिखाया हो या नहीं, क्या क्या नहीं करना चाहिए, इसकी उन्हें ऐसी तालीम दी है कि बस। लड़कियाँ क्या हैं कठपुतलियाँ हैं और उनके माता-पिता को इस बात का गर्व है। वे किसी चीज को कभी तोड़ती-फोड़ती नहीं। वे दौड़ती हैं और खेलती भी हैं, लेकिन शाम के वक्त और चूँकि उन्हें सिखाया गया है कि ये बातें उनकी सेहत के लिए जरूरी हैं। वे ऐसी मुस्कराहट अपने होंठों पर ला सकती हैं कि सोसायटी की तारिकाएँ भी उनसे कुछ सीखना चाहें तो सीख लें, पर उन्हें खिलखिलाकर किलकारी मारते हुए किसी ने सुना नहीं। सेन परिवार के मुलाकाती फक्र के साथ अपने शरारती बच्चों से खीझकर कहते हैं - "एक तुम लोग हो, और मिसेज सेन की लड़कियाँ हैं ! अबे, फूल का गमला तोड़ने के लिए बना है ! तुम लोगों के मारे घर में कुछ भी तो नहीं रह सकता !"

सो जहाँ तक सेन परिवार की लड़कियों का सवाल है, उनसे मोटर की चमक-दमक को कोई खास खतरा नहीं था। लेकिन, खोखा भी तो है। खोखा जो एक ही है, लड़का है, सबसे छोटा है। खोखा नाउम्मीद बुढ़ापे की आँख का तारा है - यह नहीं कि मिसेज सेन अपना और बुढ़ापे का कोई ताल्लुक किसी हालत में मानने को तैयार हों और सेन साहब तो सचमुच बूढ़े नहीं लगते। लेकिन मानने लगने की बात छोड़िए। हकीकत तो यही है कि खोखा का आविर्भाव तब जाकर हुआ था, जब उसकी कोई उम्मीद सेनों को बाकी नहीं रह गई थी। खोखा जीवन के नियम का अपवाद था और यह अस्वाभाविक नहीं था कि वह घर के नियमों का भी अपवाद हो। इस तरह मोटर को कोई खतरा हो सकता था तो खोखा से ही।

बात ऐसी थी कि शीमा, रजनी, लाओ, शेफाली, आरती-पाँचों हुई तो ?-उनके लिए घर में अलग नियम थे, दूसरी तरह की शिक्षा थी, और खोखा के लिए अलग, दूसरी। कहने के लिए तो सेनों का कहना था कि खोखा आखिर अपने बाप का बेटा ठहरा, उसे भी तो इंजीनियर होना है, अभी से उसमें इसके लक्षण दिखाई पड़ते थे, इसलिए ट्रेनिंग भी उसे वैसी ही दी जा रही थी। बात यह थी कि खोखा के दुर्ललित स्वभाव के अनुसार ही सेनों ने अपने सिद्धांतों को भी बदल लिया था। अक्सर ऐसा होता है कि सेन-परिवार के दोस्त आते हैं, भड़कीले ड्राइंगरूम में बैठते हैं और बातचीत के लिए विषय का अभाव होने पर चर्चा निकल पड़ती है कि किसका लड़का क्या करेगा। तब सेन साहब बड़ी मौलिकता और दूरंदेशी के साथ फरमाते हैं कि वह तो अपने लड़के को अपने ढंग से ट्रेन करेंगे, करेंगे क्या, कर रहे हैं। आजकल की पढ़ाई-लिखाई तो फिजूल है, वह तो उसे अपनी तरह बिजनेसमैन, इंजीनियर बनाना चाहते हैं। "अब देखिए न," सेन साहब कहते हैं, "खोखा पाँच साल का हो

रहा है। लोग कहते हैं, उसे किंडरगार्टन स्कूल में भेज दो, लेकिन, अभी यह इन्तजाम किया है कि कारखाने का बढ़ई मिस्त्री दो-एक घंटे के लिए आकर उसके साथ कुछ ठोक-पीट किया करे। इससे बच्चे की उँगलियाँ अभी से औजारों से वाकिफ हो जाएँगी। हिन्दुस्तानी लोग यही नहीं समझते।''

एक दिन का वाकया है कि ड्राइंगरूम में सेन साहब के कुछ दोस्त बैठ गप-शप कर रहे थे। उनमें एक साहब साधारण हैसियत के अखबार-नवीस थे और सेनों के दूर के रिश्तेदार भी होते थे। साथ में उनका लड़का भी था, जो खोखा से भी छोटा, पर बड़ा समझदार और होनहार मालूम पड़ता था। किसी ने उसकी कोई हरकत देखकर उसकी कुछ तारीफ कर दी और उन साहब से पूछा कि बच्चा स्कूल तो जाता ही होगा। इसके पंहले कि पत्रकार महोदय कुछ ज़वाब देते, सेन साहब ने कहना शुरू कर दिया, ''मैं तो खोखाको इंजीनियर बनाने जा रहा हूँ''..... और वे ही बातें जिन्हें दुहराकर वे थकते नहीं थे। पत्रकार महोदय चुप मुस्कराते रहे। जब उनसे फिर पूछा गया कि अपने बच्चे के विषय में उनका क्या खयाल है तो उन्होने कहा, ''मैं चाहता हूँ वह जेंटिलमैन जरूर बने, और जो कुछ बने, उसका काम है, उसे पूरी आजादी रहेगी।'' सेन साहब इस उत्तर के शिष्ट और प्रच्छन्न व्यंग्य पर ऐंठकर रह गये।

तभी बाहर शोर-गुल सुनकर सेन साहब उठने लगे तो उनके मित्रों ने भी जाने की इच्छा प्रकट की और उन्हीं के साथ सभी बाहर आए। बाहर सेन साहब का शोफर एक औरत से उलझ रहा था। औरत के पास एक पाँच-छः साल का बच्चा खड़ा था, जिसे वह रोकने की कोशिश कर रही थी ; क्योंकि बच्चा बार-बार शोफर की तरफ झपटता था।

सेन साहब को देखकर औरत सहम गई। शोफर ने सेन साहब की ओर बढ़कर अदब के साथ कहा, ''देखिए साहब, मदन गाड़ी को छू रहा

था, गाड़ी गंदी हो जाती, मैंने मना किया तो लगा कहने-जा-जा, तो मैंने उसे पकड़कर अलग कर दिया, इस पर मुझी को दौड़ा मारने। अब उसकी माँ भी आकर खामखाह मुझसे उलझ रही है।'' मदन की माँ, मदन को ले जाओ और देखना, वह फिर ऐसी हरकत न करे।'' मदन की माँ अपने बच्चे के बाएँ घुटने से निकलते हुए खून को पोंछती हुई चली गई-ड्राइवर ने शायद उसे ढकेल दिया था और वह गिर पड़ा था। लेकिन एक मामूली किरानी के बेटे को सेन साहब के ड्राइवर ने धक्का ही दे दिया और उसे चोट ही आ गई तो आखिर ऐसी कौन-सी बात हो गई।

ठीक इसी वक्त मोटर के पीछे खट्-खट् की आवाज सुनकर सेन साहब लपके, शोफर भी दौड़ा। और लोग भी सीढ़ियों से उतरकर बाहर अपनी-अपनी गाड़ियों की ओर चले। सभी ने देखा, सेन साहब ने अपने मित्रों को सम्बोधन करते हुए कहा, ''देखा आप लोगों ने ? बड़ा शरारती हो गया है काशू ! मोटर के पीछे हरदम पड़ा रहता है। उसके कल-पुर्जों में इसकी अभी से इतनी दिलचस्पी है कि क्या बताऊँ ! शायद देखना चाह रहा था कि आखिर इस बत्ती के अन्दर है क्या।''

सेन साहब खोखा को जमीन पर रखकर अपने दोस्तों के साथ उनकी कार की ओर चले। उन्होंने अपने मित्रों की भाव-भंगिमा देखी नहीं, देखते भी तो कुछ समझ पाते इसमें शक ही था। मिस्टर सिंह अपनी कार के पास पहुँचे और सेन साहब को नमस्कार कर दरवाजा खोलने के लिए बढ़े और फिर रुक गए। उनकी निगाह अचानक ही अगले चक्के पर पड़ गई थी। उन्होंने नजदीक जाकर देखा, और परेशानी की हालत में खड़े हो गए। टायर बिलकुल बैठ गया था। शायद 'पंक्चर' हो गया था। सेन साहब भी आगे बढ़ आए और कुछ झिझकते हुए बोले, ''कहीं ऐसा तो नहीं कि काशू ने हवा निकाल दी हो ! ड्राइवर, जरा दूसरे चक्कों को भी देख लो और पम्प ले आकर हवा भर दो, और हाँ, कुर्सियाँ लॉन में लगवा

दो, तब तक हम यहीं बैठते हैं।''

ड्राइवर ने कार का चक्कर लगाकर सूचना दी कि दूसरी ओर के पिछले चक्के की हवा भी निकली हुई थी। ''काम तो काशू बाबू का ही मालूम होता है, इधर ही खेल रहे थे,'' शोफर ने बताया और पम्प लाने चला गया।

मुकर्जी साहब की गाड़ी सकुशल थी और वह अपने और पत्रकार महोदय के परिवार के साथ चलते बने। सेन साहब और मिस्टर सिंह लॉन में कुर्सियों पर बैठकर बातें करते रहे। बातों के सिलसिले में ही सेन साहब ने बताया कि काशू ने इधर चक्लों से हवा निकालने की हिकमत जान ली थी और मौका मिलते ही शरारत कर गुजरता था। उनका अपना खयाल था, उसकी इन हरकतों को देखकर तो यह साफ मालूम होता था कि इंजीनियरिंग में उसकी अभी से दिलचस्पी है। इसी तरह की दूसरी बेमतलब की बातें होती रहीं, जब तक कि चक्कों में पम्प नहीं हो गया और मिस्टर सिंह रुख्सत नहीं हो गए।

सेन साहब अन्दर लौटे तो बेयरा को मदन के पिता गिरधरलाल को, जो उनकी फैक्टरी में किरानी था और अहाते के एक कोने में-आउट हाऊस में-रहता था, बुला लाने का हुक्म दिया। गिरधरलाल आया और सेन साहब के सामने सिर झुकाकर खड़ा हो गया, जैसे खून के जुर्म में कैदी जज के सामने खड़ा हो। सेन साहब ने ठंडी, बेलौस आवाज में कहना शुरू किया, ''देखो गिरधर, मदन आजकल बहुत शोख हो गया है। मैं तुम्हारी और उसकी भलाई चाहता हूँ। गाड़ी को गंदा किया वह अलग, मना करने पर ड्राइवर को मारने दौड़ा और मेरे सामने भी डरने के बदले उसकी ओर झपटता रहा। ऐसे ही लड़के आगे चलकर गुण्डे, चोर और डाकू बनते हैं!'' गिरधरलाल कभी-कभी 'जी' कह देता था। सेन साहब का भाषण जारी था, ''उनकी हालत क्या होती है तुम जानते ही हो। उसे सँभालने

की कोशिश करो। फिर ऐसी बात हुई तो अच्छा नहीं होगा, तुम जा सकते हो।''

उस रात गिरधरलाल के क्वार्टर से आती हुई मदन की चीत्कार से सोनों का आरामदेह शयनागार गूँज गया। आराम में खलल पड़ने से कुछ झुँझलाकर पिता सेन ने अपनी धर्मपत्नी से बड़ी समझदारी की बात कही, गिरधर खुद समझदार आदमी है। उसकी बीबी ने ही लड़के को बिगाड़ दिया है। मदन की यही दवा है। मेरी तो तबीयत हुई थी कम्बख्त की खाल उधेड़ दूँ। गिरधर ने ऐसी ही कड़ाई जारी रखी तो शायद ठीक हो जाए। ''स्पेयर द रॉड एण्ड स्प्वायल द चाइल्ड।''

माता सेन की नींद उचट गई थी, उन्हें मदन की कातर चिल्लाहट से ज्यादा अपने पति की बकबक पर खीझ आ रही थी। लेकिन उन्होने भी अपनी खीझ मदन पर ही उतारी, ''कम्बख्त कैसा कौए की तरह चिल्ला रहा है। भिखमंगा कहीं का ! खोखा की बराबरी करता फिरता है।''

मदन का आर्त्तरुदन रुक गया था। खैरियत थी, उसकी सिसकियाँ सेना के शयनागार तर्क नहीं पहुँच सकती थीं।

लेकिन दूसरे दिन तो बिलकुल बेढब मामला हो गया। शाम के वक्त खेलता-कूदता खोखा बँगले के अहाते की बगलवाली गली में जा निकला। वहाँ धूल में मदन पड़ोसियों के आवारागर्द छोकरों के साथ लट्टू नचा रहा था। खोखा ने देखा तो उसकी तबीयत मचल गई, हंस कौओं की जमात में शामिल होने के लिए ललक गया। लेकिन आदत से लाचार उसने बड़े रोब के साथ मदन से कहा, ''हमको ऊ ठो लट्टू दो, हम भी खेलेगा।'' दूसरे लड़कों को कोई खास उज्र नहीं था, वे खोखा को अपनी जमात में लेने के फायदों को नजरअन्दाज नहीं कर सकते थे। पर उनके अपमानित, प्रताड़ित लीडर मदन को यह बात कब मंजूर हो सकती थी।

उसने छूटते ही जवाब दिया- "अबे भाग जा यहाँ से ! बड़ा आया है लट्टू खेलने वाला ! है भी लट्टू तेरे ? जा अपने बाबा की मोटर पर बैठ !"

काशू तैश में आ गया। वह इसी उम्र में नौकरों पर, अपनी बहनों पर, हाथ चला देता था और क्या मजाल कि उसे कोई कुछ कह दे उसने आव देखा न ताव, मदन को एक घूँसा रसीद कर दिया।

चोर, गुण्डा, डाकू होनेवाला मदन भी कब माननेवाला था। झट काशू पर टूट पड़ा। दूसरे लड़के जरा हटकर इस द्वंद्वयुद्ध का मजा लेने लगे। लेकिन यह लड़ाई हड्डी और माँस की, बँगले के पिल्ले और गली के कुत्ते की लड़ाई थी। अहाते में यही लड़ाई हुई होती तो काशू शेर हो जाता। यहाँ से तो एक मिनट बाद ही वह रोता हुआ जान लेकर भाग निकाला। महल और झोंपड़ीवालों की लड़ाई में अक्सर महलवाले ही जीतते हैं, पर उसी हालत में जब दूसरे झोंपड़ीवाले उनकी मदद अपने ही खिलाफ करते हैं। लेकिन बच्चों को इतनी अक्ल कहाँ। उन्होने न तो अपने दुर्दमनीय लीडर की ही मदद की, न अपने माता-पिता के मालिकों के लाड़ले की ही। हाँ, लड़ाई खत्म हो जाने पर तुरन्त ही सहमते हुए तितर-बितर हो गए।

मदन घर नहीं लौटा। लेकिन जाता ही कहाँ ! आठ-नौ बजे तक इधर-उधर मारा फिरता रहा। फिर भूख लगी तो गली के दरवाजे से आहिस्ता-आहिस्ता घर में घुसा। उसके लिए मार खाना मामूली बात थी। डर था तो यही कि आज की मार और दिनों से भी बुरी होगी। लेकिन उपाय ही क्या था। वह पहले रसोईघर में ही घुसा। माँ नहीं थी। बगल के सोनेवाले कमरे से बातचीत की आवाज आ रही थी। उसने इतमीनान के साथ भर-पेट खाना खाया। फिर दरवाजे के पास जाकर अन्दर की बातचीत सुनने की कोशिश करने लगा। उसे बड़ा ताज्जुब हुआ-उसके

बाबू गरज-तरज नहीं रहे थे। उसकी अम्मा ने कोई बात पूछी, जिसे वह ठीक से सुन नहीं सका, तो उसके बाबू ने झल्लाकर कहा, "अरे भाई, बताया तो, साहब ने सिर्फ यही कहा-आज से तुम्हारी कोई जरूरत नहीं ; कल मकान छोड़ देना और अपनी तनख्वाह ऑफिस से ले लेना।"..... मदन के काम की कोई बात नहीं हो रही थी, उसकी सजा की तजबीज होती रहती तो सुनने की कोशिश भी करता वह।

वह दबे पाँव बरामदे में रखी चारपाई की तरफ सोने के लिए चला तो अँधेरे में उसका पैर लोटे से लग गया। लोटे की ठन्-ठनन् की आवाज सुनकर गिरधर बाहर निकल आया। मदन की अम्मा भी उसके पीछे थी। मदन चौंककर घूमा और मार खाने की तैयारी में अपनी छाती को अपने हाथों से बाँधकर खड़ा हो गया। मदन अक्सर अपने पिता के हाथों पिटता था, बहुत पिटने पर रोता भी था, मगर बहादुरी के साथ।

गिरधर निस्सहाय निष्ठुरता के साथ मदन की ओर बढ़ा। मदन ने अपने दाँत भींच लिए। गिरधर मदन के बिल्कुल पास आ गया था कि अचानक वह ठिठक गया। उसके चेहरे से नाराजगी का बादल हट गया। उसने लपककर मदन को हाथों से उठा लिया। मदन हक्का-बक्का अपने पिता को देख रहा था। उसे याद नहीं, उसके पिता ने कब उसे इस तरह प्यार किया था, अगर कभी किया था तो। गिरधर उस बेपरवाही, उल्लास और गर्व के साथ बोल [illegible] से निकाले जाने पर ही मुमकिन हो सकता है, "शाबाश बेटा! एक तेरा बाप है, और तूने तो, बे खोखा के दो-दो दाँत तोड़ डाले! हा हा हा हा।"

VIJAYA EVENING COLLEGE
LIBRARY
BANGALORE-4
ACCN. NO. 011862
SECTION Hindi
COST Rs. 20/-
Date 13.08.99 Librarian

Call No. :

Author : Kausalya. S. G

Title : Katha Pradipika

VIJAYA EVENING COLLEGE LIBRARY
Basavanagudi, Bangalore – 560 004.

Acc. No. 011882

Title Katha Pradipika

☎ 2210132
ANIL PUSTAK KENDRA
61/F4, AVENUE ROAD, BANGALORE-2